कुशीनगर का इतिहास

धर्मरक्षित भिक्षु

कुशीनगर प्रकाशन—पुष्प ५.

कुशीनगर का इतिहास

लेखकः—

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

कुशीनगर

बुद्धाब्द २४९३

विक्रमाब्द २००६

प्रकाशकः—
मन्त्री
कुशीनगर-प्रकाशन, बौद्ध विहार
कुशीनगर, देवरिया।

प्रथम संस्करण बुद्धाब्द २४८७
द्वितीय संस्करण बुद्धाब्द २४९३

मुद्रकः—
दुर्गादत्त त्रिपाठी,
सन्मार्ग प्रेस, बनारस।

निवेदन

सन् १९४३ में 'कुशीनगर का संक्षिप्त इतिहास' प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी का परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण है; किन्तु प्रायः यह मौलिक और नवीन रूप से लिखा गया है। यद्यपि यह भी कुशीनगर का संक्षिप्त ही इतिहास है, फिर भी पूर्व-प्रकाशित ग्रन्थ के भ्रम में न पड़ने के लिए इसके नाम में परिवर्तन कर दिया गया है।

ग्रन्थ के लेखन-कार्य में प्रिय शिष्य श्रीजीवेश्चन्द्र राय से बड़ी सहायता मिली है। किन्तु अपने को धन्यवाद भी दिया जाय तो कैसे? श्रीश्यामानन्दजी वर्मा, मुड़ेरा रतनपट्टी का भी हम कम आभारी नहीं हैं, जिन्होंने कि अपने भाषणों द्वारा कुशीनगर के इतिहास के लेखन की ओर हम सबका ध्यान आकृष्ट किया था। वर्माजी से हमें अनेक बातों में परामर्श भी मिला है।

आशा है इस ग्रन्थ से इतिहास-प्रेमियों को सन्तोष होगा।

सारनाथ, बनारस
१६—८—४६

—भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशकीय वक्तव्य

हमें 'कुशीनगर-प्रकाशन' के इस पञ्चम पुष्प को प्रकाशित करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। 'कुशीनगर-प्रकाशन' का आरम्भ पड़रौना के सुप्रसिद्ध 'देवीदत्त सूरजमल फर्म' के रायबहादुर सेठ श्रीहरीराम खेतान के सुपुत्र श्रीमातादीनजी खेतान बी. ए. के प्रोत्साहन और दान से सन् १९४३ में 'कुशीनगर का संक्षिप्त इतिहास' के प्रकाशन से हुआ था। हम श्रीखेतानजी के बड़े आभारी हैं और इस पवित्र कार्य के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ निम्नलिखित व्यक्तियों ने आर्थिक सहायता प्रदान की हैं, तदर्थ हम इनके बड़े कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं कि अन्य लोग भी कुशीनगर-प्रकाशन को दान दे बौद्ध साहित्य, धर्म, इतिहास आदि के प्रकाशन में सहायता दे पुण्य के भागी होंगे।

१. श्रीनारायण दासजी बाजोरिया, काशी		२०१)
२. श्रीझाँगुरप्रसाद सिंहजी मौर्य, बजरकेरइया		८०)
३. अनागारिका विपस्सनाजी, कुशीनगर		२०)
४. श्रीमती रुद्रकुमारीजी,	,,	५)
५. अनागारिका उपेक्खाजी,	,,	२)

—मंत्री

अतीत की स्मृति

ओ कुशीनगर के खँडहर वन !

तेरा अतीत कितना उज्ज्वल, वह गाथायें तेरी अनुपम।
हैं बता रही तेरी ईंटें, तुमको सुन्दर से सुन्दरतम ॥
तू शान्तरूप चिरमय-किंचन, ओ कुशीनगर के खँडहर वन ॥
छै बार जन्म ले बोधिसत्त्व ने यहीं अरे था राज किया।
तीतर-मृग-करुण-कहानी बन, कुश आदि सुदर्शन साज लिया ॥
अद्भुत के अमित कहानीपन, ओ कुशीनगर के खँडहर वन ॥
क्या याद नहीं निर्वाण हेतु, तुमको ही उत्तम गाये थे।
औ' सुगत लोक-हित जान यहीं, निर्वाण परमपद पाये थे ॥
तेरा कैसा सुन्दर जीवन, ओ कुशीनगर के खँडहर वन ॥
वह शालवाटिका का उपवन, हिरण्यवती की लहरें लोली।
परिवेण-धाम कैसे अनुपम, जनता भी थी कैसी भोली ॥
वे थेर-थेरियों के चिन्तन, ओ कुशीनगर के खँडहर वन ॥
हैं दव्ब थेर क्या याद नहीं, बन्धुल की वेणु-शलाका भी।
धर्मी अशोक की चिर-कृतियाँ, गणराज्य-प्रसार पताका भी ॥
क्या गये अरे वे छूम-छनन, ओ कुशीनगर के खँडहर वन ॥
जगवंद्य जगद्गुरु का पावन, क्यों विस्मृत हो बैठे इकदम।
देखो अतीत यह रूप और—आती है ध्वनि जय जय गौतम ॥
जागो फिर हो युग-परिवर्तन, ओ कुशीनगर के खँडहर वन ॥

—धर्मरक्षित

'हन्द' दानि भिक्खवे ! आमन्तयामि वो

वयधम्मा सङ्खारा

अप्पमादेन

सम्पादेथ'

'हन्त भिक्षुओ ! अब तुम्हें कहता हूँ

संस्कार नाशमान् हैं

अप्रमाद के साथ

सम्पादन करो'

— भगवान् बुद्ध

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

महत्व, नाम, स्थिति और प्रागैतिहासिक वर्णन

द्वितीय प्रकरण

बुद्ध-काल

भगवान् का कुशीनगर में पदार्पण

तृतीय प्रकरण

भगवान् के उपदेश और महापरिनिर्वाण

चतुर्थ प्रकरण

अन्तिम संस्कार और सम्मान

पञ्चम प्रकरण

कुशीनगर की शोभा और उसके अन्य नगर

षष्ठ प्रकरण

कुशीनगर की महान् विभूतियाँ

सप्तम प्रकरण

अष्टम प्रकरण

नवम प्रकरण

दशम प्रकरण

एकादश प्रकरण

कुशीनगर का परिवर्तन और नाश

द्वादश प्रकरण

कुशीनगर की खोज तथा खोदाई

त्रयोदश प्रकरण

कुशीनगर की वर्तमान् अवस्था

'अप्पमादेन सम्पादेथ'

कुशीनगर का इतिहास

प्रथम प्रकरण

महत्व, नाम, स्थिति और प्रागैतिहासिक वर्णन

१. महत्व

कुशीनगर बौद्धों का एक अति पवित्र तीर्थ-स्थान है। भगवान् बुद्ध ने पैंतालीस वर्ष तक भिक्षु-संघ के साथ उत्तर में हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक, पूर्व में कजङ्गला निगम[1] के मुखेलुवन[2] से लेकर पश्चिम में कुरु प्रदेश की राजधानी थुल्लकोट्ठित[3] तक भ्रमण करके सब प्राणियों के हित-सुख के लिये कल्याणकर धर्म का उपदेश देते हुए यहीं महापरिनिर्वाण को प्राप्त किया था। उन्होंने इस स्थान के महत्व को बतलाते हुए आनन्द स्थविर से कहा था—"आनन्द! मेरे परिनिर्वाण के बाद मेरा जन्म-स्थान लुम्बिनी, बुद्धत्त्व-प्राप्ति-स्थान बुद्धगया, धर्मचक्र प्रवर्तन स्थान ऋषिपतन मृगदाय (=सारनाथ)

१—वर्तमान् कंकजोल, संथाल परगना (बिहार प्रान्त)।

२—मज्झिम निकाय ३, ५, १७।

३—दिल्ली के आस पास का कोई तत्कालीन प्रसिद्ध नगर और राजधानी। देखो—मज्झिम निकाय २, ३, ३२।

तथा परिनिर्वाण-स्थान कुशीनारा (=कुशीनगर)—ये चार महातीर्थ होंगे। श्रद्धालु भिक्षु-भिक्षुणियों और उपासक-उपासिकाओं के सत्सङ्ग के लिये उत्तम और पूजनीय होंगे। भविष्य में श्रद्धालु भिक्षु-भिक्षुणियाँ और उपासक-उपासिकायें यहाँ आयेंगी उनमें से जो कोई यहाँ के चैत्य की प्रदक्षिणा करते हुए प्रसन्न मन से काल करेगा, वह सुगति को प्राप्त होकर स्वर्ग में उत्पन्न होगा। अतः आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये ये चार स्थान दर्शनीय और संवेगोत्पादक हैं।"

आनन्द स्थविर के यह कहने पर कि 'भन्ते! इस छोटे, जंगली नगर में परिनिर्वाण को मत प्राप्त होवें। भारत में और भी चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे महानगर हैं, आप वहाँ निर्वाण प्राप्त करें। वहाँ बहुत से धनी-मानी व्यक्ति आपके भक्त हैं, वे आपके शरीर की पूजा करेंगे।' भगवान् ने कहा था—"आनन्द! इस कुशीनगर को छोटा नगर मत कहो। पूर्वकाल में यह स्थान बड़ा ही रमणीय एवं जनाकीर्ण था। धन-धान्य-सम्पन्न था। आनन्द! इसी स्थान पर मेरी छः बार मृत्यु हो चुकी है। मैं पहले छः बार चारों दिशाओं को जीतने वाला, शान्त, धार्मिक, धर्मराज और स्थिरता को स्थापित करने वाला, सातों रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होकर यहाँ राज्य किया हूँ। यह सातवीं बार यहाँ मेरा शरीरपात हो रहा है।"

भगवान् के कथनानुसार उनके परिनिर्वाण के पश्चात् कुशीनगर की महत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। एक समय वह था कि इसी कुशीनगर के शालवन उपवत्तन में कई सहस्र भिक्षु-भिक्षुणियाँ नित्यप्रति एकत्र होती थीं। नाना प्रकार की इच्छाओं को मन में लिये उपासक-उपासिकायें आती थीं। बौद्ध धर्म के

चारों महातीर्थों में यह प्रधान माना जाता था। चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, स्वर्णभूमि (=बर्मा), लङ्का, फीजी, तिब्बत, नेपाल, अरब, ईरान और भारत के विभिन्न प्रदेशों के यात्री इस पुण्य-भूमि को अपूर्व उत्साह के साथ नाना कण्टकाकीर्ण मार्गों तथा नदी-नालों को लाँघते हुए आया करते थे। इस तीर्थराज में अर्हत् भिक्षु-भिक्षुणियों और उपासक-उपासिकाओं ने जिस शान्ति-रस का सञ्चार किया था और अपने सच्चरित्र से सबको मुग्ध किया था, वह बात संसार के धर्म-इतिहास में भलीभाँति विख्यात है।

भारत के प्राचीन सोलह महाजनपदों में मल्लजनपद अपना एक विशेष स्थान रखता था। उसकी प्रधान राजधानी यही कुशीनगर था। आनन्द स्थविर के पूर्वोक्त कथनानुसार यह जान पड़ता है कि कुशीनगर भारत के तत्कालीन महानगरों में अपेक्षा-कृत छोटा था, किन्तु गणतन्त्र राज्यों में इसका अपना एक विशिष्ट स्थान था। यही कारण था कि इस प्रदेश को भी कभी-कभी कुशीनारा के ही नाम से जाना जाता था।[१] जैन ग्रन्थों के अनुसार वज्जि जनपद पर भी कुशीनगर के मल्लों का अधिकार था। लिच्छवि और मल्ल दोनों का वह सम्मिलित गणतन्त्र राज्य था। वज्जि जनपद के शासन-कार्य के संचालन के लिये नव लिच्छवि और नव मल्ल राजा होते थे।[२] पश्चिम में शाक्य, कोलिय, पिप्पलिवन के शासक भी इनके प्रभुत्व से वंचित न थे। कुशीनगर का वीर बन्धुल मल्ल कोशलनरेश प्रसेनजित का प्रधान सेनापति ही था, जिसने कि एक ही तीर से पाँच सौ

---

१ – मज्झिम निकायट्ठकथा ३, १, ३। २—निरयावलियाओ, पृष्ठ २७।

लिच्छवियों को मार डाला था। दक्षिण में काशी राष्ट्र और उत्तर में हिमालय की पहाड़ियाँ इस मल्ल-जनपद की सीमायें थीं।

बुद्धकाल से पूर्व भी मल्लराष्ट्र की राजधानी कुशीनगर का बड़ा महत्त्व था। तक्षशिला से होकर राजगृह, कौशाम्बी[1] से साकेत, श्रावस्ती, सेतव्य, कपिलवस्तु होते हुए वैशाली और कपिलवस्तु से देवदह, अनूपिया होते हुए बाराणसी (=बनारस) को जाने वाले प्रधान मार्ग कुशीनगर से ही होकर जाते थे। अतः यह एक व्यापारिक केन्द्र था। हिरण्यवती नदी के किनारे होने से तत्कालीन वाणिज्य-व्यवसाय के साधन इसे उपलब्ध थे। हिमालय पर्वत के सन्निकट होने के कारण अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ और उपयोग में आने वाली पार्वतीय वस्तुयें सुलभ थीं। मल्ल-जनपद केवल जनपद ही नहीं, प्रत्युत एक समृद्धशाली राष्ट्र था। जातक-कथाओं में इस प्रदेश को मल्लराष्ट्र ही कहा गया है।[2]

कालचक्रवश इस समय मल्ल जनपद को हम भूल चुके हैं और उसकी प्रधान राजधानी कुशीनगर खँडहर हो चुकी है, जो एक समय भिक्षुओं के लिए एकान्त में बैठकर निर्वाण को प्राप्त करने के हेतु योग-साधन का मुख्य स्थान थी। यहाँ के परिवेण (=विद्यालय), विहार, स्तूप, स्तम्भ, भिक्षुओं के काषाय-वस्त्रों की परिशुद्ध ज्योति, हिरण्यवती की शोभा, मल्ल राजाओं का सुसज्जित संस्थागार (=मन्त्रणा-गृह) और शालवन उपवत्तन अवहेलना की दृष्टि से परे हैं। विद्या, धर्म और संस्कृति का केन्द्र होने की जो ख्याति इसे प्राप्त थी, वह भूली नहीं जा सकती।

१—इलाहाबाद से प्रायः ३० मील पश्चिम यमुना के बाँये किनारे, वर्तमान् कोसम। २—जातकट्ठकथा २०, १।

२. नाम

कुशीनगर[१] का वर्तमान् नाम यद्यपि बहुत प्राचीन नहीं है, तथापि यह प्राचीन नाम 'कुशीनारा' का अपभ्रंश है। बुद्धकाल में इसका नाम कुशीनारा था, जो कुश-तृण के बहुत होने के कारण पड़ा था—ऐसा टीकाकार कहते हैं, किन्तु हम देखते हैं कि बुद्धकाल से पूर्व इसका नाम 'कुशावती' था और इसी नाम से कई शताब्दियों तक जाना जाता था। महाराज कुश के जन्म की घटना और नामकरण में भी कुश-तृण की ही प्रधानता दी गई है, किन्तु 'कुशावती' का नामकरण महाराज कुश से भी पूर्व हो चुका था।

कुछ लोग बाल्मीकि रामायण और पुराणों में वर्णित कुशावती और कुशीनगर को एक करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह निर्विवाद है कि रामायण-वर्णित कुश से बहुत पूर्व कुशीनगर का नाम कुशावती था। साथ ही मल्ल-जनपद की राजधानी और पुराण-वर्णित कुशावती (=कुशस्थली) से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः रामायण और पुराण-वर्णित कुशावती और कुशीनगर को एक मानना उचित नहीं है।

३. स्थिति

कुशीनगर हिरण्यवती नदी के पश्चिमी तट पर बसा हुआ था। नगर के दक्षिणी भाग में भी कोई छोटी नदी बहती थी। पास में शाल वृक्षों का महावन था। इसी का एक भाग शालवन

१—इसे चीनी 'किउशीनाकियीलो', सिंहली 'कुसीनारा नुवर', बर्मी 'कुसीनारुं' और तिब्बती, भूटानी आदि 'चम् छों डुङ्' नाम से पुकारते हैं।

उपवत्तन कहा जाता था, जो मल्ल राजाओं का राजोद्यान था। देवताओं को बलि चढ़ाने के कारण शालवन को देववन भी कहा जाता था। बलिहरणवन भी इसका एक अंश था।

कुशीनगर प्राचीन माप के अनुसार सागल[1] से १०० योजन, पावा[2] से तीन गव्यूति (=९ मील), अनूपिया से ५ योजन, राजगृह से २५ योजन और कपिलवस्तु[3] से ३५ योजन दूर पड़ता था। सम्प्रति संयुक्तप्रान्त के देवरिया जिले में स्थित है, जो गोरखपुर से ३२ मील पूरब, देवरिया से २१ मील उत्तर, पड़रौना से १३ मील दक्षिण-पश्चिम और तमकुही से २० मील पश्चिम पड़ता है। इसके पास ही डेढ़ मील पूरब कसया नामक एक छोटा और प्रसिद्ध कस्बा है। उक्त प्रत्येक स्थान से कुशीनगर तक पक्की सड़क आई हैं, जिन पर सदा मोटर-बसें दौड़ा करती हैं।

४. प्रागैतिहासिक वर्णन

महावंश और द्वीपवंश के अनुसार कुशीनगर बारह इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी रह चुका था। तालेश्वर (=तालिस्सर) नाम का राजा, जो तक्षशिला में राज्य कर रहा था, उसका पुत्र वहाँ से हटकर कुशावती (=कुशीनगर) को अपनी राजधानी बनाया और उसके पश्चात् बारहवें राजा सुदिन्न तक कुशीनगर राजधानी बना रहा।[4] इस बीच कुश और सुदर्शन नाम के महाप्रतापी राजा हुए थे, जिनका वर्णन भगवान् ने स्वयं किया है, उससे हम जानते हैं कि कुशीनगर

१. स्यालकोट, पंजाब। २. सठियाँव, जिला देवरिया।

३. तिलौराकोट, नेपालराज्य।

४. महावंश २, १–६, द्वीपवंश ३, ३२–३३।

अतीत काल में कैसा समृद्ध और धन-धान्यपूर्ण था, यहाँ की जनता कितनी सुखी और शिल्प-कला में आगे बढ़ी हुई थी ?

महाराज कुश का कुशीनगर से १०० योजन दूर सागल को वीणा बजाते हुए जाना और वहाँ नाना प्रकार के कार्यों को करके मद्रनरेश की राजकन्या प्रभावती का मन आकर्षित करना, सात राष्ट्रों के राजाओं को युद्ध में परास्त करना और अन्त में अपने सौहार्द से उन्हें अपना मित्र बनाकर आनन्द पूर्वक राज्य करना—मल्लराष्ट्र की राजधानी कुशीनगर के लोगों की वीरता, बुद्धिमत्ता और शिल्पकला की चातुर्मुखी उन्नति के द्योतक हैं। चक्रवर्ती महाराज सुदर्शन की राजधाना की शोभा, नगर और भवनों की बनावट, धर्म प्रासाद तथा राजा का धर्म-प्रिय स्वभाव तत्कालीन कुशीनगर की अनिर्वचनीय उन्नति को प्रगट करता है। भगवान् ने इसी कारण आयुष्मान् आनन्द से कहा था—"आनन्द! यह नगर पूर्वकाल में समृद्ध तथा देश-देशान्तरों में प्रख्यात था, इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। मैं स्वय यहाँ छः बार मृत्यु को प्राप्त हुआ हूँ।"

किन्तु, खेद है कि हमें कोई भी ऐसा साधन उपलब्ध नहीं है, जिससे भगवान् के पूर्व-जीवन सम्बन्धी कुशीनगर की सारी बातों को जान सकें। पालि ग्रन्थों में केवल कुश और सुदर्शन के ही वर्णन मिलते हैं। सम्भवतः चीनी और तिब्बती भाषा में अनूदित बौद्ध वाङ्मय में कुछ वर्णन रहा हो। वस्तुतः हुएनसांग ने उन्हीं के आधार पर भगवान् के पूर्व-जीवन सम्बन्धी दो घटनाओं का उल्लेख किया है, किन्तु भगवान् के छः बार की मृत्युवाली जीवन-घटना से उनका सम्बन्ध नहीं जान पड़ता है, क्योंकि भगवान् ने कहा है—"मैं इस स्थान पर चारों दिशाओं का विजेता, धार्मिक, सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होकर

छः बार शरीर छोड़ा हूँ।"[1] और हुएनसांग ने भगवान् के पूर्व-जन्म में तीतर तथा मृग योनि में उत्पन्न हुए जीवन-घटना का ही वर्णन किया है।

यहाँ हम पालि ग्रन्थों में आये हुए तथा हुएनसांग द्वारा वर्णित कुशीनगर-सम्बन्धी भगवान् के कुछ जीवन-वृत्तान्तों को संक्षेप में दे रहे हैं—

(१) महाराज कुश

पूर्वकाल में कुशीनगर का नाम कुशावती था। यहाँ इक्ष्वाकु (=ओक्काक) नामक राजा राज्य कर रहा था। उसे सोलह हज़ार स्त्रियाँ थीं, जिनमें शीलवती सबसे जेठी तथा पटरानी थी। राजा को बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई। राज्य-विनष्ट होने के भय से राजा और प्रजा दोनों को चिन्ता होने लगी। महामात्यों और नगरवासियों के परामर्श से एक उत्सव (=धर्म-नाटक) मनाया गया और उस उत्सव में सब स्त्रियों के साथ शीलवती भी भेजी गई। उन्हें यह आदेश दिया गया कि वे सन्तानोत्पत्ति हेतु स्वेच्छाचारिणी हो विचरण करें। सातवें दिन उत्सव समाप्त हुआ। केवल रानी शीलवती ही सफल मनोरथ हुई। उसे गर्भ प्रतिष्ठित हो गया। दस महीने बीतने पर पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र का नाम कुश रखा गया।

जब कुश कुमार पैर के बल चलने-फिरने लगा, तब शीलवती को एक दूसरा भी पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम जयम्पति पड़ा।

कुश कुमार बड़ा प्रज्ञावान था। कहते हैं कि वह आचार्य के पास बिना पढ़े-लिखे ही सब शिल्पों में पारङ्गत हो गया। किन्तु यह सब होते हुए भी वह था बड़ा कुरूप। जब वह सोलह वर्ष

---

१. दीघनिकाय २, ४।

का हुआ और उसके विवाह के लिए प्रस्ताव रखा गया, तब वह अपनी कुरूपता के ही कारण यह कहकर टाल दिया कि उसे विवाह की आवश्यकता नहीं है, वह माता-पिता की सेवा कर सन्यासी हो जायेगा। किन्तु माता-पिता के बार-बार आग्रह करने पर अन्त में विवाह करने के लिए राजी हो गया और जयम्पति को दिखलाकर उसका विवाह मद्र देश के राजा की परम सुन्दरी कन्या प्रभावती से हुआ।

विवाह होने के पश्चात् कुश का राज्याभिषेक हुआ और प्रभावती पटरानी बनी।

बहुत दिन बीत गये, किन्तु प्रभावती ने कभी महाराज कुश का मुँह नहीं देखा था। कुश उसे अपना मुँह दिखाने में लज्जित होता था। संयोगवश एक दिन जल-क्रीड़ा के समय प्रभावती ने अपने पति का मुँह देखा और उसकी कुरूपता पर चिढ़कर—"मुझे इस कुरूप से क्या ?" कह, मद्रदेश की राजधानी सागल नगर के लिए प्रस्थान कर दिया।

जो कुश पहले विवाह नहीं करना चाहता था, वह अब प्रभावती के वियोग में पागल होने लगा। जब उसे वियोग का दुःख न सहा गया, तब वह भी अपनी वीणा बजाते हुए सागल की ओर चल पड़ा। कुश बड़ा ही वाद्य-प्रिय था। वह जहाँ रहता, वहाँ वीणा की ही धुन में मस्त। वह ऐसा बलवान् और गतिमान भी था कि दोपहर तक पचास योजन मार्ग तैकर गया और सन्ध्या समय सागल जा पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर प्रभावती से मिलने के लिए उसे बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। यहाँ तक कि अपनी वेष-भूषा बदलकर हथिसार में रहना पड़ा, कुम्हार बनकर बर्तन बनाना पड़ा, पंखा बनाने वाले (=नलकार) के घर रहकर पंखे बनाने पड़े, माली

बनकर राजदरबार के लिए नाना प्रकार की मालायें बनानी पड़ीं और भण्डारी होकर भोजन बनाना पड़ा।

ऐसे करते हुए सात महीने बीत गये, किन्तु कुश को आँख भरकर देखने के लिए प्रभावती नहीं मिली। तब वह उदास होकर विचार किया—"इस कठोर-हृदया से मुझे क्या? सात महीने बीत गये, किन्तु इसे देखने भी नहीं पाया। अब मैं कुशावती लौट जाऊँगा।"

इसी बीच अकस्मात् सात देशों के राजा मद्रनरेश पर चढ़ाई किये। मद्रनरेश भय से काँपने लगा। उसे कोई उपाय नहीं सूझता था। अपने पिता को भयभीत जान, प्रभावती ने कुश के सात महीने से वहाँ रहने की बात प्रगट की। राजा ने इसे सुनकर प्रभावती की बड़ी निन्दा की और धिक्कारा तथा कुश के पास जाकर क्षमा माँगी। प्रभावती भी अपनी सात बहिनों के साथ जाकर कीचड़ में खड़े अपने पति के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी।

अब कुश को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने को उस दिन सफल पाया। तुरन्त सैनिक वेष धारण किया और मद्रराज की सेना को लेकर उन सातों राजाओं से संग्राम किया। इस संग्राम में कुश विजयी हुआ और सातों राजा बन्दी बने।

कुश मद्र-नरेश की शेष सातों पुत्रियों का विवाह बन्दी राजाओं के साथ करा, स्वयं प्रभावती को लेकर कुशावती लौट आया।

भगवान् बुद्ध ने बतलाया है कि वे ही अपने पूर्व जन्मों में एक बार 'कुश' हुए थे।[1]

१—विस्तार के लिये देखो, कुशजातक ५३१।

(२) चक्रवर्ती राजा महासुदर्शन

पूर्वकाल में महासुदर्शन नामक चारों दिशाओं पर विजय पाने वाला चक्रवर्ती राजा था। महासुदर्शन की यही कुशीनारा (=कुशीनगर) कुशावती नाम की राजधानी थी। पूर्व से लेकर पश्चिम लम्बाई में बारह योजन और चौड़ाई में उत्तर से दक्षिण सात योजन थी। कुशावती राजधानी समृद्ध और सब प्रकार से सुख-शान्ति से परिपूर्ण थी। जैसे देवताओं की आलकमन्दा (=अलकनन्दा) नामक राजधानी समृद्ध है, वैसे ही कुशावती भी उन्नतिशील थी। कुशावती राजधानी रात-दिन दस शब्दों से भरी रहती थी, जैसे हाथी के शब्द, घोड़े के शब्द, रथ के शब्द, भेरी के शब्द, मृदङ्ग के शब्द, वीणा के शब्द, गीत के शब्द, झाँझ के शब्द, ताल के शब्द, शङ्ख के शब्द, और खाओ-पीओ के शब्द।

कुशावती राजधानी सात चहारदीवारियों से घिरी थी। एक चहारदीवारी सोने की, एक चाँदी की, एक वैदूर्य की, एक स्फटिक की, एक पद्मराग की, एक मसारगल्ल (=लहसुनियाँ= Catseye) और एक सब प्रकार के रत्नों की।

कुशावती राजधानी में चार रङ्ग के द्वार लगे थे। एक द्वार सोने का, एक चाँदी का, एक वैदूर्य और एक स्फटिक का। प्रत्येक द्वार में तीन पोरसा[१] खड़े, तीन पोरसा गड़े, सब मिलाकर बारह पोरसा लम्बे, सात-सात खम्भे गड़े थे। कुशावती राजधानी सात ताड़-पंक्तियों से घिरी थी। उस समय जो वहाँ के गुण्डे, जुआरी और शराबी थे, वे वायु से हिलती ताड़-पंक्तियों के शब्द से मस्त हो नाचते और खेलते थे।

१—पोरसा=५ हाथ।

राजा महासुदर्शन के पास सात रत्न¹ और चार ऋद्धियाँ² थीं। राजा का धर्म-प्रासाद (=राजभवन) पूरब से पश्चिम लम्बाई में एक योजन और चौड़ाई में उत्तर से दक्षिण आध योजन था, जिसमें चार रङ्गों के चौरासी हजार खम्भे लगे थे। वह चौबीस सीढ़ियों और दो वेदिकाओं से सुसज्जित था। धर्म-प्रासाद के सामने 'धर्म' नामक पुष्करिणी थी, जो लम्बाई में एक योजन तथा चौड़ाई में आध योजन थी।

कुशावती राजधानी आदि चौरासी हजार नगर थे। धर्म-प्रासाद आदि चौरासी हजार प्रासाद थे। महाव्यूहकूटागार नामक अनेक महल थे। राजा के पास सुभद्रा देवी आदि चौरासी हजार स्त्रियाँ थीं। राजा चौरासी हजार थालियों का अधिष्ठाता था, जिनमें प्रातः सायं भोजन परोसा जाता था।

राजा के दर्शन किये बहुत दिन हो जाने पर एक दिन सुभद्रा देवी ने बड़े साज-सामान के साथ महाराज सुदर्शन के भवन में प्रवेश किया। परन्तु राजा बीमार था। मृत्यु सन्निकट थी। राजा का इन्द्रियों को प्रसन्न देख, मन में यह सोच—"अभी राजा की मृत्यु नहीं होगी" सुभद्रा देवी ने कहा—"देव! कुशावती राजधानी आदि ये चौरासी हजार आपके नगर हैं। इनसे प्रसन्न होवें और जीवित रहने की कामना करें।"

"देवि! आपने बहुत दिनों तक मेरे साथ प्रिय आचरण किये हैं और अब अन्तिम समय में आप अनिष्ट और अप्रिय आचरण कर रही हैं।" – राजा ने कहा।

१—सात रत्न हैं—चक्ररत्न, हस्तिरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न, परिनायकरत्न।

२—चार ऋद्धियाँ हैं—रूपवान होना, दीर्घायु होना, निरोग होना, सबका प्रिय होना।

"देव ! मैं कैसा आचरण करूँ ?"

"देवि ! आप इस प्रकार कहें—"देव ! सभी प्रियों से वियोग होता है। आप किसी कामना के साथ प्राण न त्यागें। कामनायुक्त मृत्यु दुःखपूर्ण होती है। कामनापूर्ण मृत्यु निन्दनीय होती है। कुशावती राजधानी आदि आपके चौरासी हजार नगर हैं। आप उनमें लिप्त न होवें, मन में जीवित रहने की कामना न करें।"

ऐसा कहने पर सुभद्रा देवी रोने लगी। आँसू बहाने लगी। पुनः आँसू पोंछ कर उसने कहा—"देव ! सभी प्रियों से वियोग होता है। आप कामनायुक्त प्राण न त्यागें।"

कुछ देर बाद राजा की मृत्यु हो गई। राजा महासुदर्शन ने चौरासी हजार वर्षों तक अच्छी गति को प्राप्त कर ब्रह्मलोक का राज्य किया। भगवान् ने कहा है—"आनन्द ! यदि तुम ऐसा समझो कि यह राजा महासुदर्शन उस समय कोई दूसरा राजा रहा होगा, तो आनन्द तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैं ही उस समय राजा महासुदर्शन था।[१]

(३) तीतर-कथा

अत्यन्त प्राचीन काल में इस कुशीनगर के स्थान पर एक बड़ा भारी सघन वन था, उसमें अनेक प्रकार के पशु-पक्षी अपनी-अपनी माँदें और घोंसले बनाकर रहा करते थे। एक दिन अकस्मात् बड़ी भारी आँधी आई और वन में आग लग गई। उसकी प्रचण्ड ज्वाला चारों ओर फैलने लगी।

उस समय एक तीतर भी इस शालवन में रहता था, जो इस भयानक विपद् को देख कर दया और करुणा से प्रेरित हो,

१—दीघनिकाय में सुदस्सनसुत्त और महासुदस्सन जातक ९५।

उड़कर एक झील में गया। उसमें गोता लगा, पानी भर लाया तथा अपने परों को फड़-फड़ाकर उसे उस अग्नि पर छिड़क दिया। उस पक्षी की इस दशा को देखकर देवराज शक्र उस स्थान पर आया और पूछने लगा—"तुम क्यों ऐसे मूर्ख हो गये हो जो अपने परों को फड़फड़ा-फड़फड़ा कर थका डालते हो? एक बड़ी भयंकर आग लगी हुई है—जो वन के घास-पात और वृक्षों को भस्म कर रही है। ऐसी दशा में तुम्हारे समान छोटा जीव क्योंकर इस ज्वाला को शान्त कर सकेगा?"

"आप कौन हैं?" पक्षी ने पूछा।

"मैं देवेन्द्र शक्र हूँ।"

"देव! आप में बड़ी सामर्थ्य है। आप जो कुछ चाहें कर सकते हैं। आपके सामने इस विपद् का नाश होना कुछ कठिन नहीं। आप इसको उतना ही शीघ्र दूर कर सकते हैं, जितनी देर में मुट्ठी खोली और बन्द की जाती है। इसमें आपकी कोई बड़ाई नहीं कि यह दुर्घटना इसी तरह बनी रहे। देखिये, इस समय आग चारों ओर बड़े ज़ोर से लग रही है।" यह कहकर वह फिर उड़ गया और जल ला-लाकर अपने परों से छिड़कने लगा। तब शक्र ने अपने हाथ में जल लेकर आग पर छोड़ दिया, जिससे वह शान्त हो गई।[१]

तीतर का जन्म बोधिसत्त्व[२] ने ही लिया था।

(४) मृग-कथा

अत्यन्त प्राचीन समय का वृत्तान्त है कि इस स्थान पर शालवन नामक एक विकट वन था। उस वनस्थली में जो घास-

१—देखो—हुएनसांग का भारत भ्रमण पृष्ठ ३०४-५।

२—अगले किसी जन्म में बुद्ध होनेवाले सत्व को बोधिसत्त्व कहते हैं।

पात उगा था, उसमें एक दिन अचानक आग लग गई, जिससे वनवासी पशु-पक्षी विकल हो गये, क्योंकि सामने की ओर बड़े वेग से हिरण्यवती नदी बह रही थी और पीछे की ओर आग लगी हुई थी। बचकर जायँ तो किधर ? सिवाय इसके कि नदी में कूद पड़ें।

कुछ पशु नदी में कूद पड़े, परन्तु वह शीघ्र ही डूबकर मरने लगे। उनकी इस दशा पर एक मृग को बड़ी दया आई। वह उनको बचाने की इच्छा से नदी में कूद पड़ा और पशुओं को अपनी सहायता से पार पहुँचाने लगा। यद्यपि लहरों के वेग से थपेड़ खाते-खाते, उसका शरीर हिल गया और हड्डियाँ टूट गईं, परन्तु वह अपनी सामर्थ्य भर जीवों को बचाता ही रहा। उसकी दशा बहुत बुरी हो गई। वह अब नदी में अधिक नहीं ठहर सकता था कि इतने में एक पीड़ित ख़रगोश किनारे पर आया। यद्यपि मृग बहुत विकल हो रहा था तब भी उसने धैर्य धारण कर ख़रगोश को भी उस पार पहुँचा दिया। इस कार्य में अब उसका सारा बल जाता रहा। वह थक कर नदी में डूब गया।

बोधिसत्त्व ने ही मृग का भी जन्म लिया था।[१]

—— o ——

१ — देखो - हुएनसांग का भारत भ्रमण पृष्ठ २०६-७।

द्वितीय प्रकरण

बुद्ध-काल

भगवान् बुद्ध का कुशीनगर में पदार्पण

बुद्ध-काल में कुशीनगर की महत्ता बहुत बढ़ी हुई थी। भगवान् बुद्ध इसे बहुत प्यार करते थे। यही कारण था कि वे अनेक बार यहाँ आये थे। उन्होंने अपने महापरिनिर्वाण के लिए भी इसे ही उपयुक्त स्थान समझा था। वे सारे संसार में भ्रमण कर अपने अमृतमय सदुपदेशों से सारे विश्व को पैंतालीस वर्ष तक आलोकित करते रहने के बाद वैशाली में अपना अन्तिम वर्षावास किये और वहाँ से चलकर (ई० पूर्व ५४३ में) कुशीनगर पहुँचे। उस समय कुशीनगर में बहुत से विहारों का निर्माण हो चुका था। जिनमें साढ़े बारह सौ भिक्षु आनन्द-पूर्वक रह सकते थे।

अट्ठकथाचार्य का कहना है कि कुशीनगर के लिए भगवान् की अन्तिम यात्रा तीन कारणों से हुई थी। उन्होंने देखा था कि दूसरी जगह परिनिर्वाण होने से (१) महासुदर्शनसुत्त का उपदेश न होगा, (२) सुभद्र की प्रव्रज्या न होगी, (३) अस्थि-विभाजन में महाकलह होगा, खून की नदियाँ बह चलेंगी। किन्तु, कुशीनगर में परिनिर्वाण होने से ये तीनों बातें न होंगी। अस्थि-विभाजन के बढ़ते हुए कलह को द्रोण नामक ब्राह्मण शान्त कर देगा और सब प्रसन्न होकर धार्मिक कार्यों में जुट जायेंगे। अट्ठकथाचार्य के इस कथन से यह स्पष्ट है कि भगवान्

के परिनिर्वाण के बाद उत्पन्न होनेवाले सारे धार्मिक विवादों को शान्त करने की सामर्थ्य कुशीनगर की पवित्र भूमि में विद्यमान थी।

भगवान् ने माघ मास के अन्त में वैशाली से कुशीनगर के लिए प्रस्थान किया। उन्हें वैशाली से क्रमशः भण्डग्राम, जम्बू ग्राम, हस्तिग्राम, आम्रग्राम, भोगनगर, पावा और कुशीनगर मिले थे। इन स्थानों में से वैशाली प्रकाश में आ चुकी है। वर्तमान् बनियाबसाढ़ ही वैशाली है।[१] भण्डग्राम का अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। हस्तिग्राम बिहार प्रान्त के हथुवा से ८ मील पश्चिम शिवपुर कोठी के पास था।[२] आजकल उसके नष्टावशेष को हाथीखाल कहा जाता है। बुद्ध-काल में यह हस्ति-ग्राम वज्जी देश में पड़ता था। यहाँ का उग्गत गृहपति संघ-सेवकों में सबसे बढ़कर था, जिसे भगवान् ने अग्र (=श्रेष्ठ)[१] की उपाधि दी थी। उसमें आठ अद्भुत गुण थे।[३] वह हस्तिग्राम का प्रधान सेठ था। जिस समय भगवान् सर्वप्रथम वहाँ पधारे थे और नाग-वन नामक उद्यान में विहार कर रहे थे, उस समय वह एक सप्ताह से नर्तकियों से घिरा शराब के मद में मस्त नाग-वन में विचर रहा था। जब भगवान् को देखा, तब अपनी उन सब क्रियाओं को त्यागकर उनकी शरण गया तथा उपदेश सुनकर अनागामी हो गया। उसकी चार स्त्रियाँ थीं।

१. देखो, मेरी "नेपाल यात्रा"।

२. इस सूचना के लिए मैं कविराज पं० श्रीधनुर्धर उपाध्याय शास्त्री, चीनीमिल, हथुवा का कृतज्ञ हूँ।

३. देखो, अंगुत्तर निकाय ८, ३, २।

उसने अपनी जेठी स्त्री को सहर्ष दूसरे पुरुष को दान कर दिया था।

वर्तमान् हाथीखाल से चार कोस उत्तर-पश्चिम जमुनही नाम का एक प्राचीन गाँव मिलता है। यहाँ गिरे हुए विहारों के ध्वंसावशेष वर्तमान् हैं। लोग इन्हें बंजारों का गाँव बताया करते हैं। जमुनही गाँव ही प्राचीन जम्बूग्राम जान पड़ता है।

तमकुही स्टेट से ६ मील दक्षिण-पश्चिम अमया नाम के गाँव के उत्तर बहुत बड़ा खँडहर है। यहाँ पर भगवान् बुद्ध की दो मूर्तियाँ हैं। एक का सिर नहीं है। इन्हीं मूर्तियों को यहाँ के लोग 'हीरमती की देवी' कहा करते हैं। इन मूर्तियों के पास ही दक्षिण-पूरब दूसरे टीले पर एक चार फ़ीट ऊँची काले पत्थर की बनी हुई मूर्ति खड़ी की गई है। इसे ग्रामीण "सिद्ध बाबा" कहते हैं। यह मूर्ति बोधिसत्व की है। यहाँ दो स्तूपों के ध्वंसावशेष वर्तमान् हैं। पास ही दो छोटे-छोटे पोखरे हैं। यहाँ का खंडहर लगभग बीस एकड़ भूमि में फैला हुआ है। निश्चय ही यह आम्रग्राम है।

अमया से ६ मील पश्चिम बद्राँव नामक गाँव पड़ता है। यहाँ के खँडहर भी बहुत प्राचीन हैं। एक बहुत बड़ा स्तूपावशेष अब भी यहाँ वर्तमान है। जान पड़ता है, बद्राँव ही भोगनगर है।

भगवान् ने भोगनगर के आनन्द चैत्य में विहार किया था और वहीं चार महाप्रदेश का उपदेश दिया था।[1] भोगनगर में ही ४९वें सिद्ध जालन्धरपाद का जन्म हुआ था, जो अबौद्ध सम्प्रदाय में उत्पन्न हुए थे, परन्तु बौद्ध-धार्मिक स्थान के प्रभाव

---

१. देखो, दीघनि० २, ३।

से एक अच्छे भिक्षु बन गये थे। बाद में सिद्ध 'कूर्मपाद' को सङ्गति में आकर उनके शिष्य हो गये थे।

१. पावा

भोगनगर के बाद पावा नगर पड़ा था। जो मल्लराष्ट्र की द्वितीय राजधानी था। भगवान् भिक्षुसंघ के साथ पावा में अनेक बार आ चुके थे। पावावासी मल्लों ने अपने नव-निर्मित संस्थागार (= Mote hall) को सर्वप्रथम तथागत के श्रीचरणों से ही पवित्र कराया था। आयुष्मान् सारिपुत्र ने सङ्गीति परियाय सुत्त का उपदेश पावा में ही दिया था।[१]

पावा के मल्ल बड़े बहादुर और पराक्रमी थे। वे अपने गणतन्त्र राज्य का सञ्चालन बड़ी बुद्धिमत्ता से करते थे। परिशिष्ट पर्व[२] और सामगाम सुत्त[३] में आया है कि महावीर स्वामी की मृत्यु पावा में ही हुई थी। अट्ठकथा[४] में कहा गया है कि जब महावीर स्वामी का प्रिय शिष्य उपालि गृहपति बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहणकर लिया और दस गाथाओं से बुद्ध के गुणों को सुनाया, तब उन्हें मार्मिक आघात पहुँचा। वे मुँह से गर्म खून फेंक दिये। उनके शिष्यों ने अस्वस्थ ही उन्हें पावा पहुँचाया। वे वहाँ पहुँचकर थोड़े दिनों में मर गये।

उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्य दो पक्षों में विभक्त हो गये थे। उनमें परस्पर धार्मिक मतभेद उठ खड़ा हुआ था। जिसके समाचार को चुन्द ने आयुष्मान् आनन्द को सुनाते हुए कहा था—"भन्ते! निगंठ नाथपुत्त (=महावीर) अभी-अभी पावा

१. दी० नि० ३, १०। २. अध्याय ११।
३. मज्झिम नि० ३, १, ४। ४. पपञ्चसूदनी ३, १, ४।

में मरे हैं। उनके मरने पर उनके शिष्यों में मानो युद्ध ही हो रहा है"[१]

इस प्रकार पावा जैनियों का भी महातीर्थ है, किन्तु जैनी इसे भूल चुके हैं। वे सम्प्रति बिहार शरीफ से आग्नेय कोण में सात मील की दूरी पर पावा की स्थिति बतलाते हैं। हमें कल्प-सूत्र[२] से विदित है कि पावा में जब महावीर की मृत्यु हुई, तब मल्लों ने उनके सम्मान में दीपावली मनायी थी। यदि बिहार शरीफ के पास पावा माना जाय तो मल्लों की दीपावली का प्रसंग उससे कुछ मेल ही नहीं खाता। बौद्ध ग्रन्थों से भी यह ठीक नहीं उतरता।

भगवान् बुद्ध ने अपना अन्तिम भोजन पावा में ही किया था। जिससे बौद्धों की दृष्टि में भी इसका महत्व-पूर्ण स्थान है। बुद्ध-परिनिर्वाण के पश्चात् पावा के मल्लों को भी बुद्ध-धातु का एक अंश मिला था, जिस पर उन्होंने एक बहुत बड़ा स्तूप बनवाया था, जिसके दर्शन के लिये दूर-दूर से लोग आया करते थे।

२. पावा के अमर-रत्न

पावा में कुछ ऐसे अमर-रत्न उत्पन्न हुए थे, जिनके कारण उसकी मर्यादा और भी बढ़ी। वे पावा के नाम को विश्व के इतिहास में अमर कर दिये। उनके महान् त्याग और उत्सर्ग ने पावा को एक अनुपम ज्योति प्रदान की, जिससे आज तक पावा का गौरव अमित-आभा के साथ जगमगा रहा है। उन अमर-रत्नों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

१—मज्झिम नि० ३, १, ४ और दीघ नि० ३, ६। २—धनपति सिंह प्रकाशन, पृष्ठ ७७।

(१) चुन्द कम्मारपुत्त

चुन्द कम्मारपुत्त पावा के एक महाधनी कुल में उत्पन्न हुआ था। जिस समय भगवान् सर्व प्रथम पावा में आये थे, उस समय वह भगवान् के प्रथम-दर्शन में ही स्रोतापन्न होकर अपने आम के बगीचे में विहार बनवाकर संघ को दान किया था।[१]

दूसरे समय भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ मल्ल देश में घूमते हुए पावा आये और चुन्द के दान दिये हुए आम के बगीचे में ठहरे। चुन्द ने भगवान् के आगमन को सुनकर दूसरे दिन के लिये अपने यहाँ निमंत्रित किया। भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ उसके यहाँ भोजन करने गये। चुन्द ने सब भिक्षुओं को सोने की थालियों में भोजन परोसा। जब सब भिक्षु भोजन कर चुके तब उनमें से एक कपटी, धूर्त भिक्षु ने अपने थैले में एक थाली उठाकर रख ली। चुन्द ने उसे वैसा करते हुए देखा, किन्तु कुछ नहीं कहा। वह भगवान् के पास जाकर श्रमणों के विषय में प्रश्न पूछा।[२] भगवान् ने उसके प्रश्न पूछने के कारण को जान लिया और उसके पूछे प्रश्नों का उत्तर देकर उस चोर भिक्षु का निग्रह कर भिक्षुओं के लिये नया नियम बनाया।[३]

पीछे भगवान् के परिनिर्वाण के समय चुन्द ने उन्हें अन्तिम भोजन खिलाया था। जिसकी भगवान् ने बड़ी प्रशंसा की थी और बतलाया था कि इस अन्तिम भोजन-दानका महाफल होगा।

भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् वह उन्हें दिये हुए अपने अन्तिम दान को स्मरण करते हुए अत्यन्त प्रीति और आनन्द के साथ अपना शेष जीवन बिताया।[४]

१—दीघ नि० अट्ठकथा २,३। २—देखो—सुत्त निपात १,५।
३—सुत्तनिपात अट्ठकथा १,५। ४—दीघ नि० अट्ठ० २,३।

(२) खण्ड सुमन स्थविर

खण्ड सुमन स्थविर का भी जन्म पावा के मल्ल-राजकुल में हुआ था। कहते हैं इनके उत्पन्न होने के समय राज-भवन में खण्ड-शर्करा और सुमन-पुष्प प्रादुर्भूत हुए थे, इसलिये इनका नाम खण्ड-सुमन रक्खा गया था।

इनकी तरुणाई में भगवान् पावा आये थे और चुन्द के आम के बगीचे में विहार कर रहे थे। वे वहाँ भगवान् के पास जाकर धर्मोपदेश सुने तथा प्रव्रजित होकर कुछ ही दिनों में अर्हत् पद पा लिये।[1] वे जीवन भर आनन्द-पूर्वक रह कर परम सुख-शान्ति परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

(३) चतुर्भिक्षु

आयुष्मान् गोधिक ,सुबाहु, वल्लिय और उत्तिय—इन चारों स्थविरों का जन्म पावा के मल्ल राजवंश में ही हुआ था। इनमें परस्पर बड़ी घनिष्ठता और मित्रता थी। एक बार ये किसी कार्य से कपिलवस्तु[2] गये। उस समय भगवान् कपिलवस्तु जाकर, न्यग्रोधाराम में रहते हुए यमक-प्रतिहार्य को दिखला कर शुद्धोदन के साथ सभी शाक्य राजाओं का मान-मर्दन किये। ये चारों मल्ल-राजपुत्र भी उस प्रातिहार्य को देखकर वहीं प्रव्रजित हो गये और योग-भावना का अभ्यास करते हुए थोड़े ही दिनों में प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा लिये।

अर्हत्व पाकर ये चारों स्थविर एक ही साथ आरण्य में रहते थे। इनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। बड़े-बड़े राजा-अमात्य इनके दर्शनों के लिये लालयित रहा करते थे। एक बार जब ये लोग राजगृह गये, तब मगध नरेश बिम्बिसार ने इनके आने का

१—थेरगाथा अट्ठ० १,१०,७। २—वर्तमान् तौलिहवा बाजार के पास तिलौरा कोट, नेपाल राज्यान्तर्गत।

समाचार पा, जाकर प्रणाम् किया और अलग-अलग कुटी बनवा कर इन्हें वहीं वर्षा-वास करने की प्रार्थना की।

राजा कुटी के छप्पर को ठीक कराना भूल गया। ये चारों स्थविर उन्हीं बिना छाई हुई कुटियों में रहते थे। कहते हैं कि बरसात बीतने लगी, किन्तु राजगृह में एक बूंद भी पानी नहीं गिरा, तब राजा को बड़ी चिन्ता हुई उसने अन्त में जाना कि यह सब उसी की भूल का फल है और शीघ्र इनकी कुटियों को छवाया। जब ये चारों भिक्षु उन नवीन छायी हुई कुटियों में प्रवेश किये, तब मूसलधार जलवृष्टि प्रारम्भ हो गई।[१]

ये चारों महाप्रताप भिक्षु आत्म-पर-हित साधन में लगे हुए समयानुसार परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

३. पावा-समीक्षा

यद्यपि पावा जैन और बौद्ध दोनों के लिए दर्शनीय स्थान है, तथापि अभी तक पावा के स्थान-निर्धारण में मतैक्य नहीं है। महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन जी का कहना है कि पपउर ही पावा है,[२] किन्तु हमारी दृष्टि में पपउर पावा नहीं जान पड़ता। क्योंकि पपउर रामकोला के पास कुशीनगर के उत्तर अवस्थित है और पावा को कुशीनगर से पूरब होना चाहिए। श्री जनरल कनिंघम ने पावा पड़रौना को बतलाया है। उनका कथन है—"पावा कसया से १२ माल उत्तर गण्डक की ओर है, इसके भग्नावशेष पड़रौना में मिले हैं। पड़रौना ही पावा है, जो पावा=पावान=पारवान=पाडरवान से हुआ है।"[३] किन्तु वैशाली और कुशीनगर की वर्तमान् स्थिति तथा इन दोनों नगरों

१. थेरगाथा अट्ठकथा १.६.१-४। २. बुद्धचर्या पृष्ठ ४८७।
3. See, A. S. R. for 1861-62, p. 74-76.

के बीच में पड़ने वाले प्राचीन स्थानों पर ध्यान देने से श्री कनिंघम का कथन भी ठीक नहीं जँचता। पावा शब्द से पड़रौना होने की व्याख्या भी बड़ी मनोरञ्जक है।

बदराँव के बाद लगभग छः मील पश्चिम और कुशीनगर से नव मील पूरब सठियाँव-फाजिलनगर के खँडहर पड़ते हैं, जिनका विस्तार लगभग डेढ़ मील है। अभी तक इनका खनन-कार्य नहीं हुआ है। सठियाँव गाँव भी खँडहरों पर ही बसा हुआ है। फाज़िलनगर में एक बहुत बड़ा स्तूप गिरा पड़ा है। अब भी उसकी ऊँचाई सतह से तीस-चालीस हाथ है, जिसके ऊपर मुसलमानों ने एक फ़कीर की क़ब्र बना ली है। निस्सन्देह सठियाँव-फाजिलनगर ही प्राचीन पावानगर है। विभिन्न नगरों की दूरियों से भी यही प्रमाणित होता है। बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर कुशीनगर से कपिलवस्तु ३५ योजन दूर था। सागल १०० योजन[1], राजगृह २५ योजन[2], अनूपिया ५ योजन और पावा ३ गव्युति (=पौन योजन)[3]। इन्हें इस प्रकार समझना चाहिये:—

कुशीनगर से—	योजन	प्राचीन मील	नवीन मील
कपिलवस्तु	३५	४४३.५३४	१४५.६
सागल	१००	११६७.२४	४१६
राजगृह	२५	३१६.८१	१०४
अनूपिया	५	६३.३६२	२०.८
पावा	.७५	९.५४५	८.२५

१. एकाहेनेव योजनसतिकं मग्गं खेपेत्वा ..सागलनगरं पाविसि-कुसजातक २०, १।

२. कुसिनारातो यावराजगहं पञ्चवीसति योजनानि-दीघ अ० २,३

३. पावानगरतो तीणि गावुतानि कुसिनारानगरं-दीघ० अ० २,३।

श्री ए० सी० कारलाइल ने भी सठियाँव को ही पावा सिद्ध किया है। उन्होंने लिखा है—"कुछ वर्ष पूर्व जनरल कनिंघम ने पड़रौना को पावा बतलाया था, जो कसया से १२ मील उत्तर-पूर्व और कुशीनगर से १३ मील दूर पड़ता है। वह पावा नहीं हो सकता, क्योंकि पड़रौना कुशीनगर से बहुत कुछ उत्तर पड़ता है, वह वैशाली-कुशीनगर के मार्ग में कैसे पड़ेगा? वैशाली तो कुशीनगर से दक्षिण-पूर्व है। अतः पावा को कुशीनगर से दक्षिण-पूर्व ही होना चाहिए।

मैंने कुशीनगर से १० मील पूर्व-दक्षिण एक खँडहर पाया जिसे सठियाँव कहते हैं, वहाँ एक बहुत बड़ा स्तूप है, जो फाजिल-नगर में है। वह सठियाँव से आधा मील उत्तर पूर्व है। स्तूप के पास दूसरे भ खँडहर हैं।

सठियाँव डीह ही पुराना पावानगर है। उसपर एक गाँव भी बसा हुआ है, उसे भी सठियाँव कहते हैं। सठियाँव का डीह घने जंगलों से ढँका है। वस्तुतः सठियाँव शब्द चैत्य का अपभ्रंश है। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद यहाँ के मल्लों ने भी एक चैत्य बनवाया था।

सठियाँव को केन्द्र मानकर देखने से उसके चारों ओर तीन मील तक खँडहरें हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) ध्वंसित-स्तूप (फाजिलनगर) (२) सठियाँव डीह (३) असमानपुर डीह (दक्षिण) (४) धनहा (दक्षिण-पश्चिम) (५) नँदवा (पश्चिम-दक्षिण) (६) पटखौली और सरैया (पश्चिम) (७) गंगीटीकर (उत्तर) (८) करमैनी (उत्तर-पूर्व) (९) झर मठिया (पूर्व-उत्तर) (१०) पटहेरवा, अहलादपुर और सिधौली[1] के बीच का टीला (११) मीर बिहार के पास का

१. सिधौली नहीं, प्रत्युत देवरिया (वैरगही) होना चाहिए।

टीला (दक्षिण-पूर्व) (१२) बनबीरा (दक्षिण-पूर्व)। अतः सठियाँव ही पुरातन पावानगर है।[१]"

४. भगवान् का पावा-आगमन

भगवान् भोगनगर से महा भिक्षु-संघ के साथ पावा आये थे। वहाँ चुन्द कम्मारपुत्त के आम्रवन में ठहरे थे। चुन्द ने जब भगवान् के आगमन के समाचार को सुना, तब वह भगवान् के पास जा प्रणाम् कर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसे धार्मिक-कथा से उत्तेजित किया। चुन्द ने कथा से उत्तेजित हो भगवान् से कहा—"भन्ते! भिक्षु-संघ के साथ कल का मेरा भोजन स्वीकार करें।" भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया।

चुन्द ने दूसरे दिन उत्तम खाद्य-भोज्य और बहुत-सा "सूकर मद्दव"[२] तैयार करवा, भगवान् को समय की सूचना दी। भगवान् पूर्वाह्न समय भिक्षु-संघ के साथ चुन्द के घर गये।

---

१. देखो, A.S.R., for 1877-78-79 and 80, Volume xxii page 29-33.

२. दीघ निकाय की अर्थकथा (२.३) में लिखा है—"न बहुत तरुण, न बहुत बूढ़े, एक वर्ष के सूअर का बना मांस; वह मृदु भी, स्निग्ध भी होता है। कोई कोई कहते हैं—नर्म चावल को पांच गोरस से जूस पकाने के विधान का नाम है, जैसे गवपान पाक का नाम है। कोई कहते हैं—शूकर मार्दव नामक रसायन विधि है, वह रसायन शास्त्र में आती है। उसे चुन्द ने भगवान् का परिनिर्वाण न हो, इसके लिये तैयार कराया था।" उदान की अर्थकथा (८,५) में मांस का खण्डन किया गया है और बतलाया गया है कि कुछ लोग सूअरों से मर्दित बंसकलीर तथा अहिच्छत्रक कहते हैं।

जाकर बिछे आसन पर बैठे। भोजन कर चुन्द को धार्मिक कथा से समुत्तेजित कर आसन से उठकर चल दिये।

चुन्द के यहाँ भोजन करने के पश्चात् भगवान् को रक्तातिसार की कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। मरणान्तक पीड़ा होने लगी, उसे भगवान् ने स्मृति के साथ बिना दुखित हुए सहन किया। भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—"आओ आनन्द! जहाँ कुसीनारा (=कुशीनगर) है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते!" आनन्द ने कहा।

५. कुशीनगर की ओर

जब भगवान् पावा से कुशीनगर आ रहे थे, तब वे रास्ते में दो नदियों को पारकर हिरञ्ञवती (=हिरण्यवती) के किनारे पहुँचे थे। बीमारी की हालत में उन्हें पावा से कुशीनगर के बीच पचीस बार बैठना पड़ा था।[१]

६. सोना नदी का जलपान

पावा से कुछ दूर चलने पर वे मार्ग से हटकर, एक वृक्ष के नीचे गये। वहाँ जाकर उन्होंने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! मेरे लिये चौपेती संघाटी[२] बिछा दो। मैं थक गया हूँ, बैठूँगा।" "अच्छा भन्ते!" कह आनन्द ने आसन बिछा दिया।

भगवान् ने कहा—"आनन्द! मेरे लिये पानी लाओ। प्यास लगी है।"

---

१. एतस्मिं अन्तरे पञ्चवीसतिया ठानेसु निसीदित्वा—दीघ नि० अट्ठ० २.३।

२. वह वस्त्र जिसे भिक्षु ऊपर से ओढ़ते हैं।

"भन्ते ! अभी-अभी पाँच सौ गाड़ियाँ निकली हैं।[1] चक्कों का मथा-हिंड़ा पानी मैला होकर बह रहा है। भन्ते ! यह सुन्दर शीतल जल वाली रमणीय ककुत्था (=ककुत्सा या ककुधा) नदी करीब में है। वहाँ चलकर पानी पियें। शरीर को ठण्डा करें।"

भगवान् के बार-बार आग्रह करने पर आनन्द पात्र लेकर वहाँ गये। नदी को देखते ही उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मन में सोचने लगे—"तथागत की महाऋद्धि और महानुभावता आश्चर्य-जनक है। अद्भुत है यह छोटी नदी (=नदिका)। चक्कों से मथे, हिंड़े, मैले, थोड़े पानी के साथ जो बह रही थी, वह मेरे आने पर स्वच्छ, निर्मल बह रही है।"

वे पात्र में जल लेकर भगवान् के पास गये। जाकर भगवान् से बोले—"आश्चर्य है भन्ते ! अद्भुत है भन्ते ! भगवान् पानी पियें, सुगत पानी पियें।"

उक्त नदी सठियाँव से ॰ मील पश्चिम पड़ती है। अब उसका प्रवाह-स्थान मात्र अवशेष है। लोग कहते हैं कि पहले वह कुछ बड़ी थी। उसका वर्तमान् नाम सोना है।[2]

जिस समय भगवान् मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठे थे, उस समय आलार कालाम का शिष्य पुक्कुस[3] नाम का मल्ल

---

१. व्यापार करने के लिये पाँच सौ बैलगाड़ियों को जोते, आगे सार्थवाह को पठा स्वयं मल्ल सरदार पीछे-पीछे सर्वरत्नमय रथपर बैठा कुशीनगर से पावानगर जा रहा था—देखो दीघ० नि० अट्ठ० २.३।

२. श्री० ए० सी० एल० कारलायल ने भी इसी को उक्त नदी प्रमाणित की है। उन्होंने इसके तीन नाम लिखे हैं - सोना, सोनवा, अन्हया। उनका कहना है कि अन्हया शब्द अनहान=स्नान का अपभ्रंश है। See A. S. R. Volume XXII, Page 30-31.

३. यह कुशीनगर के प्रजातन्त्र राज्य का एक राजा था।

कुशीनगर से पावा पाँच सौ बैलगाड़ियों के साथ व्यापार करने के लिये जा रहा था। वह भगवान् को देखकर, उनके पास आया और प्रणाम् कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर उसने आलार कालाम की ध्यान विषयक प्रशंसा की। तब भगवान् ने आलार कालाम से भी बढ़कर अपनी ध्यानावस्था को बतलाया।[1] तब पुक्कुस मल्ल ने भगवान् से कहा—"भन्ते जो मेरी आलार कालाम में श्रद्धा थी, उसे हवा में उड़ा देता हूँ या तेज धार वाली नदी में बहा देता हूँ। भन्ते, मैं भगवान् की शरण जाता हूँ तथा धर्म और भिक्षु संघ की भी। आज से मुझे आप अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक समझें।"

तत्पश्चात् उसने अपने इंगुर के रंगवाले चमकते दुशाले को मँगवाकर भगवान् को दान करना चाहा। भगवान् ने पुक्कुस से कहा—"पुक्कुस! दुशाले में से एक मुझे ओढ़ा दे और एक आनन्द को।"

"अच्छा, भन्ते!" कह कर उसने वैसा किया और भगवान् के धर्मोपदेश को सुन, उन्हें प्रणाम् कर चला गया।

पुक्कुस मल्लपुत्र के जाने के बाद आयुष्मान् आनन्द ने उस अपने शाल को भगवान् के शरीर पर ढाँक दिया। तब भगवान् के शरीर पर किरण फूटी जान पड़ने लगी। इस अद्भुत बात को आनन्द ने भगवान् से कहा। भगवान् ने बतलाया—

"आनन्द! दो समयों में तथागत के शरीर का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध जान पड़ता है। प्रथम, जिस समय तथागत परम ज्ञान (=सम्बोधि) को पाते हैं और दूसरा, जिस रात को आवागमन से रहित महापरिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं।

---

१. विस्तार के लिये देखो महापरिनिर्वाण सूत्र।

आनन्द ! आज रात के पिछले पहर में कुसीनारा के उपवत्तन नामक मल्लों के शालवन में जोड़े शाल-वृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ, जहाँ ककुत्था नदी है, वहाँ चलें।"

७. ककुत्था नदी में स्नान

वहाँ से चलकर भगवान् ककुत्था नदी पर गये। उसमें स्नान कर, पानी पी आम्रवन में पहुँचे, जो उसी नदी के किनारे पश्चिमी तट पर था।[1] भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! शायद कोई चुन्द को चिन्तित करे और कहे—'चुन्द ! तुझे अलाभ है, तूने दुर्लाभ कमाया, जो कि तथागत तेरी भिक्षा को खाकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।' आनन्द ! चुन्द की इस चिन्ता को दूर करना और कहना—'आवुस ! तुझे लाभ है, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरी भिक्षा खाकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। मुझसे भगवान् ने यह कहा था—'आनन्द ! दो भिक्षायें महाफलदायक हैं। कौन सी दो ? आनन्द ! जिसको खाकर तथागत अनुत्तर सम्बोधि को प्राप्त होते हैं तथा जिसको भोजन कर आवागमन से रहित परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं। चुन्द कम्मारपुत्त ने आयु, वर्ण, सुख, यश, स्वर्ग और आधिपत्य प्राप्त करानेवाले कर्म को संचित किया।"

उक्त ककुत्था नदी पावा और कुशीनगर के बीच अवस्थित है। इसमें सर्वदा पानी रहता है। इस नदी के कई नाम हैं। प्रायः लोग घाघी नाम से पुकारा करते हैं। श्री ए० सी० एल० कारलाइल ने भी घाघी को ही ककुत्था नदी प्रमाणित की है।

१—तस्सायेव नदिया तीरे अम्बवनन्ति-दीघ नि० अट्ठ० २, ३।

८. हिरण्यवती नदी के तीर

ककुत्था नदी के तीरवाले आम्रवन में भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आओ आनन्द ! जहाँ हिरण्यवती नदी का पहला तीर है, जहाँ कुसीनारा के मल्लों का शालवन उपवत्तन है, वहाँ चलें।"

यह हिरण्यवती नदी कुशीनगर के पास ही पूरब में बहती है। अनेक लेखकों ने बड़ी गण्डक और छोटी गण्डक का भी नाम हिरण्यवती लिखा है, परन्तु जिस हिरण्यवती के पश्चिमी तट पर मल्लों का शालवन उपवत्तन था, वह वर्तमान् हिरण्यवती ही थी। किसी समय बड़ी गण्डक भी कुशीनगर के पास से होकर बहती थी, आज भी उसके प्राचीन प्रवाह-स्थान कसया से लेकर पड़रौना से पूरब बाँसी तक विभिन्न स्थानों पर मिलते हैं। वह इस स्थान को छोड़कर हटते-हटते कालान्तर में बहुत पूरब हट गई। किन्तु हम यह भली भाँति जानते हैं कि बुद्ध-काल में वह वैशाली के पश्चिम बहती थी और उस समय उसका नाम मही नदी था।

अभी सन् १९११ ई० में रामाभार के स्तूप की खोदाई में ताल के पश्चिमी किनारे, स्तूप से कुछ दक्षिण और उत्तर दूर-दूर पर नदी में लट्ठों के बांधे हुए बेड़े प्राप्त हुए थे। कुशीनगर के पास ही एक गाँव में नदी के सन्निकट कुँआ खोदते हुए, लगभग १५ हाथ की गहराई पर लट्ठों की बाँधी हुई बेर्ड़ें मिली थीं। विशुनपुर गाँव के उत्तर बकया ताल में अब भी साखू के गिरे पेड़ों की लकड़ियाँ और उनकी जड़ें मिलती हैं। कुशीनगर के पास का लमुहा नाला भी इसका अपवाद नहीं। डा० वोगेल् को कुशीनगर की पूर्वी चहारदीवारी वर्तमान् भूमि की

सतह से १२ फीट नीचे मिली थी और उसके ऊपर नदी द्वारा बिछाये हुये बालू का ढेर जमा था।[१]

इन सब बातों से स्पष्ट है कि हिरण्यवती नदी पहले एक बहुत बड़ी नदी थी। आजकल इसके अनेक नाम हैं। विशुनपुर गाँव के पास इसे लोग कुसम्हीनारा कहते हैं—उसके पूरब और कसया के पश्चिम, वह नाला जो सीधे रामाभार में जाकर मिलता है, रोहनाला नाम से पुकारा जाता है। जनरल कनिंघम ने उसे ही हिरण्यवती बतलाया है।,[२] किन्तु हम उससे सहमत नहीं। एक और नाला जो रामाभार और अनुरुधवा के बीच से होता हुआ डुमरी गाँव के पूरब से जाकर शिवराजपट्टी के पास खनुआ में मिलता है, उसका नाम हिरवा की नारी है। रामाभार ताल से निकलकर जो छोटा नाला सिसवा के पूरब होकर बहते हुए कुलकुला के पास खनुआ में मिलता है, जहाँपर कि घाघी (ककुत्था) भी आ मिलती है, उसका नाम सोनरा नाला है। वस्तुतः कुसम्होनारा, हिरवा की नारी आदि नाम हिरण्यवती के ही पर्याय हैं। मुकुटबन्धन चैत्य (=रामाभार) टीला पर विचार करते हुए हमें यही मानना पड़ता है, कि वर्तमान् वही नाला हिरण्यवती नदी है, जो रामाभार से उत्तर में कुसम्हीनारा और दक्षिण में हिरवा की नारी के नाम से पुकारा जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि सोनरा नाला कृत्रिम है।

६. शालवन उपवत्तन में अन्तिम शयन

हिरण्यवती नदी के किनारे पश्चिम ओर मल्लों का शालवन

1. A. S, R. for 1905-6, p. 75.
2. A. S. R. for 1861-62.

उपवत्तन था। भगवान् हिरण्यवती नदी पारकर महाभिक्षु संघ के साथ वहाँ गये। अट्ठकथा में आया है—उद्यान से शाल (=साखू)-पंक्ति पूर्व मुँह जाकर उत्तर की ओर मुड़ी थी, इसलिए वह उपवत्तन कहा जाता था। टीका में यह भी लिखा गया है कि वह शालवन उपवत्तन कुसीनारा के दक्षिण-पश्चिम था, किन्तु यह पाठ अशुद्ध और इतिहास विरुद्ध है। अट्ठकथा से हम यह भी जानते हैं कि शालवन उपवत्तन मल्ल राजाओं का राज्योद्यान था। उसमें रहने के लिये एक सुन्दर भवन बना हुआ था, जिसमें समय-समय पर मल्ल राजा विश्राम किया करते थे।

भगवान् शालवन उपवत्तन में पहुँचकर आयुष्मान् आनन्द से बोले—"आनन्द! इन जोड़े शाल वृक्षों के बीच, उत्तर ओर सिरहाना कर[1] मञ्च[2] (=पलंग) बिछा दो। मैं थका हूँ, लेटूँगा।"

१०. तथागत की सात्विक पूजा

आनन्द के मंच बिछा देने पर भगवान् दाहिनी करवट सिंहशय्या से लेटे। उस समय दोनों शालवृक्षों से अति सुन्दर शोभायमान पुष्पों की वर्षा हुई। तब भगवान् ने आनन्द से कहा—"आनन्द! देखो, इस असमय में वृक्षों में फूल फूलकर

---

१. उत्तर ओर सिरहाना करके मञ्च बिछाने में टीकाकार ने मतभेद दिखलाते हुए उनका खण्डन किया है—"कोई-कोई कहते हैं—उत्तर दिशा की ओर मुख और पूर्व दिशा की ओर सिरहाना करके मंच बिछाया गया था, किन्तु यह उनकी कल्पना मात्र है।"—देखो टीका-पाठ।

२. उस उद्यान में मल्लराज कुल का शयन-मंच था—दीघ नि० अट्ठ० २, ३।

तथागत पर बरस गये। दूसरी ओर आकाश से देवता भी स्वर्गीय दिव्य पुष्पों और गन्ध की वर्षा कर, नानाभाँति के वाद्य, गीत और नाच से तथागत की पूजा और प्रतिष्ठा कर रहे हैं। किन्तु आनन्द! इससे तथागत की पूजा नहीं होती। जो भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्म के मार्ग पर आरूढ़ हो विहरते हैं, यथार्थ मार्गपर चलते हुए धर्मानुसार आचरण करनेवाले होते हैं; उससे ही तथागत की सात्विक पूजा होती है।"

तृतीय प्रकरण

भगवान् के उपदेश और महापरिनिर्वाण

१. देवता-सन्निपात

भगवान् दो शाल वृक्षों के बीच बिछे हुए मञ्च पर लेटे थे। आयुष्मान् उपवान सामने खड़े हुए पंखा झल रहे थे। तब भगवान् ने उन्हें अपने सामने से हटा दिया। यह देखकर आनन्द को बहुत दुःख हुआ। वे भगवान् के पास जाकर कहे—"भन्ते! यह आयुष्मान् उपवान चिरकाल तक भगवान् के सेवक रहे, किन्तु अन्तिम समय में भगवान् ने उन्हें हटा दिया है, इसका क्या कारण है?"

"आनन्द! दसों लोक-धातु के देवता तथागत के दर्शन के लिये एकत्रित हुए हैं। जितना यह कुसीनारा के मल्लों का शालवन उपवत्तन है, उसकी चारों ओर बारह योजन तक बाल की नोक गड़ाने भर के लिये भी स्थान नहीं है, जहाँ कि महेशाख्य देवता न हों। "देवता परेशान हो रहे हैं—हम तथागत के दर्शनार्थ दूर से आये हैं, तथागत अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध कभी ही लोक में उत्पन्न होते हैं। आज ही रात के पिछले पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा और यह महेशाख्य भिक्षु ढाँकते हुए भगवान् के सामने खड़ा है, अन्तिम समय में हमें तथागत का दर्शन नहीं मिल रहा है।"

"भन्ते! देवता कैसे दिखाई दे रहे हैं?"

"आनन्द! देवता आकाश को पृथ्वी ख्यालकर बाल खोले रो रहे हैं। हाथ उठाकर चिल्ला रहे हैं। कटे वृक्ष की भाँति

भूमि पर गिर रहे हैं। यह कहते हुए लोट-पलोट रहे हैं—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं।

२. चार महातीर्थों की घोषणा

तब आनन्द ने कहा—"भन्ते! पहले भिक्षु वर्षावास कर भगवान् के दर्शनार्थ आते थे। हमें उनका दर्शन होता था। हम परस्पर सत्संग करते थे, किन्तु भन्ते! भगवान् के बाद हमें उनका दर्शन न होगा। हम परस्पर सत्संग न कर सकेंगे।"

"आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए (१) लुम्बिनी (२) बुद्धगया (३) ऋषिपतन मृगदाय (=सारनाथ) (४) कुसीनारा (=कुशीनगर)—ये चार स्थान दर्शनीय होंगे।"

तदनन्तर भगवान् ने स्त्रियों के साथ भिक्षुओं की व्यवहार-मर्यादा तथा अन्त्येष्टि-क्रिया के नियमों को बतलाया।

३. आनन्द के गुण-कथन

शीघ्र ही भगवान् के निर्वाण होने की बात को सुनकर आयुष्मान् आनन्द विहार में जाकर खूँटी पकड़कर यह सोचते हुए रोने लगे—"हाय! मैं अभी अर्हत नहीं हुआ और मेरे अनुकम्पक शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा है!!" भगवान् ने इस बात को जानकर उन्हें बुलवाया और—"आनन्द! मत शोक करो, मत रोओ! मैंने तो पहले ही कह दिया है कि सभी प्रियों से जुदाई होती है। जो कुछ उत्पन्न है, वह नाश होने वाला है। आनन्द! तूने चिरकाल तक मैत्रीपूर्ण तथागत की सेवा की है। तू कृतपुण्य है।[१] निर्वाण-साधन में लगकर जल्दी अनास्रव हो जा!" इस प्रकार समझाते हुए पलाश जातक को कहा तथा सब भिक्षुओं को सम्बोधित करके आनन्द के गुणों की प्रशंसा की।

---

१. देखो, जातक ३०८।

४. मल्लों द्वारा वन्दना

तत्पश्चात् आनन्द के कुशीनगर को छोटा नगर कहने पर भगवान् ने महाराज सुदर्शन की कथा को सुनाकर कहा—"आनन्द ! कुशीनगर में जाओ और मल्लों को खबर दो—हे वाशिष्ठो ! आज रात्रि के शेष पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा ! इसलिये तुम लोग प्रसन्नता पूर्वक आओ, जिसमें तुम्हें पीछे पश्चाताप न करना पड़े कि हम लोगों को राज्य-भूमि में ही तथागत का परिनिर्वाण हुआ, फिर भी हम उनका अन्तिम दर्शन न कर सके।"

भगवान् की बात को सुनकर आयुष्मान् आनन्द कुसीनारा गये। उस समय कुसीनारावासी मल्ल किसी विशेष कार्य के लिए संस्थगार (=पार्लियामेण्ट-भवन) में एकत्र हुए थे। आयुष्मान् आनन्द ने उन्हें कहा—"हे वाशिष्ठ गण ! आज रात्रि के शेष पहर में भगवान् का परिनिर्वाण होगा। इसलिये तुम लोग आओ और उनके दर्शन करो, जिससे तुम्हें पीछे पछताना न पड़े।"

आयुष्मान् आनन्द की बात सुनते ही सभी मल्लयुवक, वधू तथा कन्यायें दुःखित और शोकार्त्त हुईं। वे सब लोग यह कह कहकर रोते और विलाप करते थे—"भगवान् बहुत शीघ्र निर्वाण प्राप्त कर रहे हैं। हम लोगों के चक्षु से बहुत जल्दी अन्तर्धान हो रहे हैं।" कुछ देर विलाप करने के पश्चात् वे भगवान् के पास गये।

आनन्द ने एक-एक मल्ल परिवार को अलग-अलग नगर की वीथि के अनुसार भगवान् की वन्दना करायी। उस समय मल्ल कन्याओं और वधुओं के रोने से इतना अश्रुपात

हुआ कि भगवान् का पैर भींग गया।' अब रात्रि का प्रथम पहर बीत चुका था।

५. सुभद्र की प्रव्रज्या

उस समय सुभद्र नामक एक परिव्राजक कुसीनारा में रहता था। उसने जब सुना कि आज रात्रि के शेष पहर में महाश्रमण गौतम का परिनिर्वाण होगा, तब उसके मन में चिन्ता हुई कि मैंने प्राचीन और वृद्ध परिव्राजकों, आचार्यों और शिक्षक लोगों को यह कहते सुना है कि कभी किसी काल में सम्यक् सम्बुद्ध लोग इस पृथ्वी पर आते हैं; सो उनका आज रात्रि के शेष पहर में परिनिर्वाण होगा। मेरे मन में धर्म के विषय में कुछ शंसय है। अतएव मुझे उचित है कि चलकर उनके दर्शन करूँ। ऐसा सोच, सुभद्र परिव्राजक मल्लों के शालवन में पहुँचा और आनन्द के निकट उपस्थित हो बोला—"मैंने सुना है, भगवान् तथागत आज रात्रि के शेष पहर में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। मुझे धर्म के विषय में कुछ सन्देह है, दर्शन कर उसे मैं दूर करना चाहता हूँ। मुझको भगवान् का दर्शन मिलना चाहिए।"

सुभद्र की बात को सुन, आनन्द ने कहा—"नहीं सुभद्र! अब तथागत को कष्ट मत दो। भगवान् निर्वाण-शय्या पर हैं।" सुभद्र ने दूसरी बार भी प्रार्थना की। आनन्द ने फिर निषेध किया। इस प्रकार बार-बार सुभद्र और आनन्द के परस्पर आग्रह और निषेध को भगवान् ने सुना।

जिन महापुरुष ने पैंतालीस वर्ष तक अखिन्न चित्त से जिज्ञासुओं के लिये अमृत वर्षा की, वे अन्तिम समय में अपनी सहज करुणा को कैसे भूल सकते थे? भगवान् ने आनन्द को

---

१. चुल्लवग्ग ११।

बुलाकर कहा—"आनन्द ! सुभद्र को हमारे पास आने दो। वह तथागत का दर्शन कर सकता है। वह तथागत से जो कुछ पूछेगा, केवल सत्य जानने की इच्छा से ही पूछेगा, कष्ट देने की इच्छा से नहीं।"

यह सुन आनन्द ने सुभद्र को भगवान् के पास जाने के लिये कहा। सुभद्र भगवान् के निकट जाकर अभिवादन करके एक ओर बैठ गया और बोला—"हे गौतम ! जो श्रमण, ब्राह्मण, तीर्थङ्कर, आदि लोगों के द्वारा उत्तम माने जाने वाले हैं, क्या वे सभी अपने दावे को वैसा जानते हैं या नहीं जानते, अथवा कोई-कोई जानते हैं ?"

"नहीं सुभद्र, जाने दो इस प्रश्न को। तुम्हें धर्म का उपदेश करता हूँ, उसे सुनो और अच्छी तरह धारण करो। सुभद्र ! जिस धर्म में आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग[1] उपलब्ध नहीं होता, वहाँ प्रथम श्रमण (=स्रोतापन्न) भी उपलब्ध नहीं होता और न दूसरा (=सकृदागामी) ही। सुभद्र ! जिस धर्म में आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग उपलब्ध होता है, वहाँ, प्रथम, द्वितीय दोनों भी श्रमण पाये जाते हैं। दूसरे मत श्रमणों से शून्य हैं। सुभद्र ! यदि भिक्षु ठीक से विहार करें, तो लोक अर्हन्तों से शून्य न होवे। मैं उन्तीस वर्ष की अवस्था में पुण्यधर्म का खोजी हो, प्रव्रजित हुआ और तब से इक्कावन वर्ष हो गये किन्तु सत्य-धर्म के एक भाग को भी देखनेवाले यहाँ से बाहर किसी श्रमण को नहीं देखा।

---

१. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग कहते हैं मध्यम प्रतिपदा को। इसके आठ भाग हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि।

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥
आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥[१]

आकाश में पद का चिन्ह नहीं, (बौद्ध धर्म के) बाहर श्रमण नहीं, लोग प्रपंच में लगे हैं, किन्तु तथागत प्रपंच से रहित हैं। संसार में कोई भी संस्कार शाश्वत नहीं है, बुद्धों में चंचलता नहीं।"

ऐसा कहने पर सुभद्र ने भगवान् से कहा—"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघ की भी। भन्ते! मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।" तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"तो आनन्द! सुभद्र को प्रव्राजित करो।"

सुभद्र ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। और शीघ्र ही अर्हत्व लाभ कर लिया। वही भगवान् का अन्तिम शिष्य हुआ।

६. अन्तिम उपदेश

पिछले पहर में भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! शायद तुमको ऐसा हो (१) यह धर्म (=प्रवचन) चले गये गुरु का है, अब हमारा कोई शास्ता (=गुरु) नहीं है; तो आनन्द! ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय बतलाये हैं, मेरे बाद वही तुम लोगों का शास्ता है।

(२) जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कह कर न पुकारें। उपसम्पदा और

---

१. धम्मपदट्ठकथा १८,१२।

प्रव्रज्या में अधिक दिन का भिक्षु अपने से कम समय के भिक्षु को नाम से या गोत्र से अथवा आवुस कहकर पुकारें। कम समय के भिक्षु अपने से अधिक समय वाले, वृद्ध भिक्षु को 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारें।

(३) इच्छा होने पर संघ मेरे बाद छोटे-छोटे (=क्षुद्रानुक्षुद्र) भिक्षु नियमों को छोड़ दे।

(४) मेरे बाद छन्न[1] भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना चाहिए।"

"भन्ते! ब्रह्मदण्ड क्या है?" आयुष्मान् आनन्द ने पूछा।

"छन्न भिक्षु जो चाहे सो कहे, भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिए, न उपदेश करना चाहिए और न अनुशासन ही।"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ! यदि बुद्ध, धर्म, संघ में एक भिक्षु को भी शंका हो, तो पूछ लो। पीछे मत पछताना, कि शास्ता हमारे सम्मुख थे, किन्तु हम भगवान् के सामने कुछ पूछ न सके।"

ऐसा कहने पर सब भिक्षु चुप रहे। भगवान् ने दो बार और पूछा और जब देखा कि किसी के मन में शंका नहीं है, तब उन्होंने भिक्षु संघ को अन्तिम उपदेश देते हुए कहा :—

"हन्द दानि भिक्खवे! आमन्तयामि वो वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादेथाति।"

"हन्त! भिक्षुओ, अब तुम्हें कहता हूं "संस्कार नाशमान् हैं। अप्रमाद के साथ (जीवन के लक्ष्य को) पूर्ण करो।"

७. महापरिनिर्वाण

इस प्रकार संसार के सबसे बड़े महापुरुष, जगद्गुरु और

---

१. भगवान् के परिनिर्वाण के बाद छन्न भिक्षु को दण्ड दिया गया था। देखो, चुल्लवग्ग ११।

महान् उपदेशक ने पैंतालीस वर्ष तक संसार को अपना आदर्श तथा कल्याण का सुपथ प्रदर्शन कर पीड़ित जन-समूह को शान्तिदायक, सुगम, सत्यपथ बता, वैशाख-पूर्णिमा मंगलवार[1] (ई० पूर्व ५४३) को भोर (=सबेरा) होते-होते महापरिनिर्वाण को प्राप्त किया! उस समय भीषण लोमहर्षण के साथ महा भूचाल हुआ। देव-दुन्दुभियाँ बजीं। वहाँ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, देवता तथा असंख्य भिक्षु एकत्र थे, जिनमें केवल सात लाख वीतराग (=अर्हत) भिक्षु थे।[2]

उस महामुनि ने वैशाख पूर्णिमा को ही जन्म लिया था, परम ज्ञान-प्राप्त किया था और उसी दिन परम शान्तिमय निर्वाण नगर के लिए प्रस्थान भी किया।

१. 'बिसाखमासे सुक्कपक्खे पण्णरे ।। तिथियं भुम्मवारे राधनक्खत्ते'
२. महावंश ३, १-४।

चतुर्थ प्रकरण

अन्तिम संस्कार और सम्मान

१. सप्ताह भर महोत्सव

भगवान् के परिनिर्वाण हो जाने पर प्रातःकाल आयुष्मान् अनुरुद्ध ने आनन्द से कहा - आवुस आनन्द ! कुसीनारा में जाकर, मल्लों से कहो—'वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। अब जिसका तुम काल समझो, वह करो।"

उस समय कुसीनारा के मल्ल किसी काम से संस्थागार (=प्रजातन्त्र सभा-भवन) में जमा थे। आयुष्मान् आनन्द वहाँ गये। जाकर उन्होंने कहा; आयुष्मान् आनन्द के मुख से ऐसी बात को सुन, सभी मल्ल, पुत्र-पुत्रियाँ, जवान-बूढ़े दुखित हो रोने लगे तथा क्रन्दन करने लगे। किसी तरह उन्होंने होश सम्हालते हुए पुरुषों (=सेवकों) को आज्ञा दी - "भणे ! कुसीनारा के सभी गन्ध-माला और वाद्यों को जमा करो।"

तत्पश्चात् वे गन्ध, माला, सभी वाद्यों तथा पाँच सौ थान के जोड़ों को लेकर शालवन उपवत्तन में जहाँ भगवान् का शरीर था, वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान् के शरीर को नृत्य, गीत वाद्य, माला, गन्ध से सत्कार करते उस दिन को बिता दिया। कुसीनारा के मल्लों ने सोचा—आज देर हो गई, अब कल भगवान् के शरीर का दाह-कर्म करेंगे। इस प्रकार भगवान् के मृत शरीर का सत्कार करते हुए छः दिन विकाल हो जाने ही में बीत गये। सातवें दिन मल्लों ने आपस में सलाह की—'हम

भगवान् को नृत्य, गन्ध आदि में सत्कार करते, नगर के दक्षिण से ले जाकर बाहर ही बाहर, नगर के दक्षिण शरीर का दाह करें।" अर्थकथा में आया है कि कुशीनगर के दक्षिण एक नदी बहती थी,[1] उसके किनारे ही मल्लों ने भगवान् के शरीर का दाह-संस्कार करने को सोचा था। (सम्भवतः वर्तमान् खनुआ नदी ही वह नदी थी। जो आजकल कुशीनगर के दक्षिण एक नाला के रूप में बहती है, किन्तु हतवा के पास से वह नदी का रूप धारण कर ली है और कुलकुला तक जाते-जाते सोनरा तथा घाघो को पाकर बड़ी नदी बन गई है। सम्भवतः कभी छोटी गण्डक का प्रवाह-मार्ग वही था।)

जब मल्लों ने यह परामर्श कर लिया कि हम भगवान् के शरीर को नगर से दक्षिण बहने वाली नदी के किनारे जलायें, तब आठ प्रमुख मल्ल[2] शिर से नहा, नये वस्त्र पहिन भगवान् के शरीर को उठाकर ले चलना चाहे, किन्तु वे नहीं उठा पाये। उन्होंने आयुष्मान् अनुरुद्ध से पूछा—"भन्ते! क्या कारण है कि हम इतने मिलकर नहीं उठा सकते?"

"वशिष्ठो! तुम्हारा मतलब दूसरा है तथा देवताओं का दूसरा।"

"भन्ते! देवताओं का मतलब क्या है?"

---

१. "नगर के दक्षिण बाहर ही बाहर नगर में न ले जाकर अनुराधपुर (लंका) के दक्षिण-द्वार के सदृश स्थान में रखकर, सत्कार सम्मान करके जेतवन (श्रावस्ती) के सदृश स्थान पर जलायेंगे..."—दीघ निकाय अट्ठकथा २.३।"

२. आठ प्रमुख मल्ल का अर्थ है आठ मल्ल राजा—दीघ नि० अट्ठ० २.३।

"देवताओं का मतलब है—हम भगवान् के शरीर को दिव्य नृत्य से सत्कार करते, नगर के उत्तर-उत्तर ले जा उत्तर-द्वार से नगर में प्रवेश कर नगर के बीच ले जाकर, पूर्व द्वार से निकल नगर की पूर्व ओर जहाँ मुकुटबन्धन[1] नामक मल्लों का चैत्य (=देवस्थान) है, वहाँ भगवान् के शरीर का दाह करेंगे।"

तब मल्ल भगवान् के शरीर को दिव्य और मानुष नृत्यके साथ सत्कार करते नगर के उत्तर-उत्तर ले जा, उत्तर द्वार से नगर में प्रवेशकर नगर के बीच में ले गये। उस समय बन्धुल मल्ल की स्त्री मल्लिका ने अपने 'महालता-प्रशाधन' को भगवान् के शरीर पर ओढ़ा दिया। वह प्रशाधन (=आभूषण) इतना बड़ा था कि भगवान् के शरीर पर शिर से लेकर पैर तक फैल गया। मल्लिका की पूजा के पश्चात् पूर्व-द्वार से निकलकर नगर के पूर्व ओर जहाँ मुकुटबन्धन चैत्य था, वहाँ रखा। तब मल्लों ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा—"भन्ते! हम तथागत के शरीर को कैसे करें?"

"वाशिष्ठो! जैसे चक्रवर्ती राजा के शरीर को करते हैं।"

"भन्ते! कैसे चक्रवर्ती राजा के शरीर को करते हैं?"

"वाशिष्ठो! चक्रवर्ती राजा के शरीर को नये वस्त्र से लपेटते हैं। नये वस्त्र से लपेटकर धुनी कपास से लपेटते हैं। धुनी कपास से लपेटकर नये वस्त्र से लपेटते हैं। इसी प्रकार पाँच सौ जोड़े वस्त्रों से लपेटकर सोने की बनी तेल की द्रोणी (=लम्बी सन्दूक) में डालकर दूसरी द्रोणी से ढँककर, सब सुगन्धियों से बनी चिता में जलाते हैं। ऐसे ही तथागत का भी दाह करके बड़े चौरास्ते पर स्तूप बनवाना चाहिए। वहाँ जो लोग माला, गन्ध या चूर्ण चढ़ायेंगे, अभिवादन करेंगे या चित्त को प्रसन्न करेंगे, उन्हें वह चिरकाल तक हित-सुख के लिये होगा।"

---

१. वर्तमान रामाभार (कुशीनगर)।

तब मल्लों ने भगवान् के शरीर को कोरे वस्त्र में लपेटा। कोरे वस्त्र में लपेटकर धुनी कपास से लपेटा। धुनी कपास से लपेटकर कोरे वस्त्र में लपेटा। इस प्रकार पाँच सौ जोड़े वस्त्र में लपेटकर सोने की द्रोणी में रख, सारे गन्ध-काष्ठों की चिता बनाकर भगवान् के शरीर को चिता में रखा।

२. महाकाश्यप को दर्शन

उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के साथ पावा से कुशीनगर आ रहे थे।[1] तब वे मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस समय एक आजीवक (=नङ्गा साधु) कुसीनारा से मंदार का पुष्प ले पावा जा रहा था। उसे देखकर महाकाश्यप ने पूछा—

"आवुस! क्या हमारे शास्ता को भी जानते हो?"

"हाँ, आवुस! जानता हूँ, श्रमण गौतम को परिनिर्वाण हुए आज एक सप्ताह हो गया, मैंने यह मन्दार-पुष्प वहीं से पाया है।"

यह सुनकर वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, उनमें कोई कोई बाँह उठाकर रोने लगे, क्रन्दन और विलाप करने लगे। भूमि पर लोटने पलोटने लगे। उस समय सुभद्र[2] नामक एक बुढ़ापे में प्रव्रजित हुआ भिक्षु उस परिषद् में बैठा था। तब उसने उन भिक्षुओं से कहा—"मत आवुस, शोक करो, मत रोओ। हम छुटकारा पा गये। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे—'यह

---

१. "पावा में भिक्षाटन करके कुशीनगर आने के लिये पावा से चले थे"—अट्ठकथा।

२.-यह आतुमा (अंगुतराप) का रहने वाला जाति का हजाम था, जो वृद्धावस्था में प्रव्रजित हुआ था। विस्तार के लिए देखो, विनयपिटक में खन्धक ६।

तुम्हें करना योग्य है, यह योग्य नहीं ।' अब हम जो चाहेंगे, वह करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, वह नहीं करेंगे ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

"आवुस, मत शोक करो, मत रोओ। आवुस, भगवान् ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियों से जुदाई होनी है।"

उस समय चार मल्ल-राजा सिर से नहाकर, नया वस्त्र पहिन भगवान् की चिता को जलाना चाहते थे, किन्तु नहीं जला पाते थे। तब मल्लों ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से पूछा—"भन्ते! क्या कारण है कि चिता प्रज्वलित नहीं होती?"

"वाशिष्ठो! देवताओं का दूसरा ही अभिप्राय है?"

"भन्ते! देवताओं का क्या अभिप्राय है?"

"आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के साथ पावा से कुसीनारा आ रहे हैं; भगवान् की चिता तबतक न जलेगी, जब तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान् के चरणों की सिर से वन्दना न कर लेंगे।"

आयुष्मान् महाकाश्यप ने जहाँ मुकुटबन्धन नामक चैत्य था, जहाँ भगवान् की चिता थी, वहाँ पहुँचकर चीवर को एक कन्धे पर कर अञ्जलि जोड़ तीन बार चिता की परिक्रमा कर, भगवान् के चरणों को सिर से वन्दना की।[1] उन पाँच सौ भिक्षुओं ने भी

१. स्थविर चिता की प्रदक्षिणा करके...अभिज्ञा वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो, उससे उठ, यह अधिष्ठान किये कि हज़ार आरों से युक्त चक्र वाले भगवान् के पैर कपास के पर्दे, वस्त्रों के जोड़े, सोने की द्रोणी और चन्दन की चिता को फाड़कर मेरे शिर से आ लगें।...अधिष्ठान करते ही वैसा हुआ...वन्दना कर लेने पर फिर पैर पूर्ववत हो गये,—अट्ठकथा।

वैसा ही किया। उन सबके वन्दना कर लेते ही चिता स्वयं जल उठी। जैसे जलते हुए घी या तेल की न राख जान पड़ती है, न कोयला; वैसे ही भगवान् के शरीर में जो झिल्ली, चर्म, मांस, नस या लाल थी, न राख जान पड़ी न कोयला; केवल अस्थियाँ ही बाकी रह गईं। उन पाँच सौ जोड़े वस्त्रों में से जो सबसे भीतर तथा जो सबसे बाहर था, वह नहीं जला। भगवान् के शरीर के दग्ध हो जाने पर मेघ ने प्रादुर्भूत हो आकाश से भगवान् की चिता को ठण्डा किया। कुसीनारा के मल्लों ने भी सर्व गन्ध-मिश्रित जल से भगवान् की चिता को ठंडा किया।

३. धातु-पूजा

तब मल्लों ने भगवान् की अस्थियों को एकत्र कर संस्थागार में सुगन्धी छिड़क, नाना प्रकार के पुष्पों को बिखेर कर ऊपर कपड़े का चँदवा ताना। उसमें सुनहरे तारों से तारे, आदि बनाकर अनेक प्रकार की मालाओं को लटकाया। संस्थागार से लेकर मुकुटबन्धन-शाला तक मार्ग के दोनों ओर पर्दा लगवाये। ऊपर कपड़े का चँदवा तनवाया। नाना प्रकार से उसे भी सुसज्जित और चित्रित किया। पाँच रंगों की ध्वजायें उड़ायीं। सजी-धजी हुई नगर की वीथियों में केले के खम्भे गाड़े तथा जल पूर्ण कलश रखे। मशाल जलाकर अलंकृत हाथी की पीठ पर धातु के साथ सोने की द्रोणी को रखकर माला-गन्ध आदि से पूजते, भलीभाँति क्रीड़ा करते, बाजा बजाते हुए नगर में ले जाकर संस्थागार में सारमय पर्यङ्क पर रख ऊपर से श्वेत छत्र लगाया।

ऐसा करके कुशीनगर के मल्ल राजाओं ने भगवान् की अस्थियों को सप्ताह भर संस्थागार में बर्छी-भाले लिये हुए

सिपाहियों से घेरवा कर रखा। उन सिपाहियों के बाद एक दूसरे से सटे हुए हाथी खड़े कराये और उसके पश्चात् क्रमशः घोड़े, रथ, योद्धा। सबके अन्त में धनुष लिये हुए सिपाहियों से घेरवा दिया, जो एक दूसरे से सटे हुए थे। इस प्रकार एकयोजन स्थान घिर गया था। कुशीनगर के आबाल वृद्ध सभी लोग सप्ताह भर नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गन्ध से भगवान् की अस्थियों का पूजा-सत्कार करते रहे।

४. स्तूप-निर्माण

जब भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त हो जाने की बात चारों ओर फैली, तब मगध नरेश वैदेहीपुत्र अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवी, अल्लकप्प के बुली, रामग्राम के कोलिय, और पावा के मल्ल यह कहकर कुशीनगर के मल्लों के पास अपने-अपने यहाँ से दूत भेजे—"भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं, भगवान् की अस्थियाँ हमें भी मिलनी चाहिए। हम भी भगवान् की अस्थियों पर स्तूप बनवायेंगे और पूजा करेंगे।" इसी प्रकार कपिलवस्तु के शाक्यों ने भी कहला भेजा—"भगवान् हमारे ज्ञाति-श्रेष्ठ थे, हमें भी भगवान् की अस्थियाँ चाहिए।" वेठदीप के ब्राह्मणों ने भी पत्र भेजा—"भगवान् क्षत्रिय थे, हम ब्राह्मण हैं, हमें भी भगवान् की अस्थियाँ चाहिए।"

ऐसे सन्देश पाने पर कुशीनगर के मल्लों ने कहा—"भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्र में परिनिर्वृत हुए हैं, हम भगवान् की अस्थि (=धातु) का भाग किसी को नहीं देंगे।"

जब कुशीनगरके मल्लोंके इस इनकार का समाचार चारों ओर फैला, तब सब राजा अपनी-अपनी सेना लेकर उनपर चढ़ दौड़े। फिर भी कुशीनगर के मल्लों ने सिंह गर्जना की और कहा—"क्या

तुम लोगों के राज्य में जो रत्न उत्पन्न होते हैं, उनका भाग हमें देते हो? हम लोग बुद्ध-रत्न को पाकर तुम्हें क्योंकर देंगे? भगवान् हमारे यहाँ ही आये, हमें बुलवाये, न कि तुम लोगों के यहाँ गये और तुम्हें बुलवाये ही। यदि युद्ध करना हो तो हम तैयार हैं, हम भी अपने माँ के लाल हैं, हमारी भुजाओं में घुन नहीं लगे हैं।"[१]

इस प्रकार घोर संग्राम होने की सम्भावना हो गई। अट्ठकथा में यह भी लिखा है कि यदि युद्ध होता तो सभी राजाओं को कुशीनगर के मल्लों से हारना पड़ता, कुशीनगर के मल्लों की ही विजय होती, क्योंकि धातु की विशेष पूजा से सभी देवता उन पर प्रसन्न थे और वे उनकी सहायता करते।

उस समय द्रोण नामक अनागामी फल प्राप्त ब्राह्मण भी वहाँ आया हुआ था। उसने देखा कि अब बिना मेरे समझाये झगड़ा शान्त नहीं होगा। तब उसने सबको समझाते हुए कहा—"आप सब मेरी बात सुनें, हमारे बुद्ध क्षमाशील थे। यह ठीक नहीं कि उन उत्तम पुरुष की अस्थि बाँटने में मारपीट हो। आप सभी मिलकर प्रेम के साथ आठ भाग कर लें। इस प्रकार चारों ओर स्तूपों का विस्तार होगा, बहुत से लोग भगवान् के मानने वाले हैं।

"तो ब्राह्मण! तू ही भगवान् की अस्थियों को आठ बराबर भागों में बाँट।"

द्रोण ने अस्थिभाग को आठ भागों में बाँटकर, उन आये हुए सात राजाओं तथा कुशीनगर के मल्लों को एक-एक भाग दे दिया। उसने भी अस्थि (=धातु) रखने वाले कुम्भ को स्तूप बनाने के लिये मल्लों से माँग लिया। इस प्रकार आठ धातु-स्तूप निर्मित हुए—

१. विस्तार के लिये देखो, अट्ठकथा २,३।

(१) राजा अजातशत्रु ने राजगृह में भगवान् की अस्थियों का स्तूप बनवाया और पूजा की। कुशीनगर से अस्थि-भाग ले जाते समय वह बड़े ही सत्कार के साथ ले गया। कुशीनगर से राजगृह पच्चीस योजन पड़ता है, इस बीच में आठ ऋषभ (=५६० गज) समतल मार्ग बनवा, मल्ल राजाओं ने मुकुट बन्धन और संस्थागार में जैसी पूजा की थी, वैसी ही पूजा की। उसने अपने पाँच सौ योजन परिमंडल राज्य के मनुष्यों को एकत्र करवाया। उन धातुओं को ले, कुशीनगर से धातु-निमित्त क्रीड़ा करते निकलकर लोग जहाँ सुन्दर पुष्पों, उद्यानों को देखते थे वहीं पूजा करते थे। इस प्रकार धातु को लेकर राजगृह जाते हुए सात वर्ष सात महीना सात दिन व्यतीत हो गये।

(२) वैशाली के लिच्छवी (३) कपिलवस्तु[१] के शाक्य (४) अल्लकप्प[२] के बुली (५) रामग्राम[३] के कोलिय, (६) वेठदीप (=विष्णु-दीप[४]) के ब्राह्मण (७) पावा[५] के मल्ल और (८) कुशीनगर के मल्लों ने भी धातु-स्तूप बनवाया।

१—वर्तमान तिलौरा कोट, नेपाल राज्यान्तर्गत तौलिहवा बाजार के पास।

२—इसका अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लग सका।

३—श्री ए. सी. एल. कारलायल ने वर्तमान रामपुर-देवरिया को रामग्राम प्रमाणित किया है, जो कि मरवा ताल के किनारे स्थित है किन्तु महावंश (३१,२५) के वर्णन से स्पष्ट है कि रामग्राम अचिरवती (= रासी) नदी के किनारे था और बाढ़ के समय वहाँ का चैत्य टूट गया था सम्भवतः गोरखपुर के पास का रामगाँव तथा रामगढ़ ही रामग्राम है।

४—सम्भवतः सम्प्रति बेतिया राज्य (बिहार प्रान्त)।

५—सठिआँव, जिला देवरिया, युक्त प्रान्त।

तदनन्तर द्रोण ब्राह्मण ने कुम्भ-स्तूप[1] तथा पिप्पलिवन[2] के मौर्यों ने भी अंगार स्तूप बनवाया। इस प्रकार आठ अस्थि-स्तूप, नवाँ कुम्भ-स्तूप और दसवाँ अंगार स्तूप बने।

भगवान् के दण्ड, पात्र, चीवर, निवासन तथा प्रत्यस्तरण को कपिलवस्तु के कुशघर में, जलछाकिनी (=करक) और कायबन्धन को पाटलिपुत्र में, उदक-शाटिका (=स्नान-वस्त्र) को चम्पानगर (=भागलपुर) में, पसीना पोंछने वाले वस्त्र को कोशल में, अरणी को मिथिला में, परिस्रावन वस्त्र को विदेह में, छूरे और शूचि-घर (=सूई रखने की फोंफी) को इन्द्रप्रस्थ में तथा शेष परिष्कार को सीमान्त जनपद में लोगों ने ले जाकर प्रतिष्ठित किया।[3]

५. पाँच सौ भिक्षुओं का चुनाव

भगवान् का परिनिर्वाण वैशाख पूर्णिमा को प्रातःकाल हुआ था। मल्लों ने सप्ताहभर उनके शरीर की पूजा की। उसके पश्चात् सप्ताहभर चिता जलती रही। तदनन्तर सप्ताहभर संस्थागार में धातुओं को रखकर उनकी पूजा की गई। इस प्रकार इक्कीस दिन व्यतीत हो गये। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को धातुओं का बँटवारा हुआ।

धातु विभाजन के दिन जब सभी भिक्षु एकत्र हुए थे, तब महाकाश्यप ने बुढ़ापे में प्रव्रजित हुए सुभद्र की उस बात को सब-

---

१—द्रोण का कुम्भ स्तूप सम्भवतः देगवार ग्राम के पास (गंगा के दक्षिण)।

२—उपधौली, जिला गोरखपुर के कुसुम्ही रेलवे स्टेशन से ११ मील, दक्षिण। देखो, A. S. R- for 1861–62.

३—देखो, बुद्धवंश २८।

को सुनाया जिसे कि उसने भगवान् के परिनिर्वाण को सुनकर भिक्षुओं से कही थी; और कहा— "हम लोग धर्म और विनय का संगायन करें, सामने अधर्म प्रगट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रगट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान हो रहा है और धर्मवादी दुर्बल।"

"तो भन्ते, आप स्थविर भिक्षुओं को चुनें।" तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने एक कम पाँच सौ अर्हत् चुने। भिक्षुओं के आग्रह करने पर आयुष्मान् आनन्द अर्हत् न होने पर भी चुन लिये गये और इस प्रकार पाँच सौ भिक्षुओं का चुनाव हुआ।

चुनाव हो जाने पर आयुष्मान् महाकाश्यप ने उन भिक्षुओं से कहा—"हम लोग राजगृह में वर्षावास करते समय धर्म और विनय का संगायन करेंगे, इन चुने हुए भिक्षुओं के अतिरिक्त दूसरे भिक्षु राजगृह में वर्षावास के लिये न जाँय। जिन भिक्षुओं का चुनाव हुआ है, उन्हें भी केवल चालीस दिन का अवकाश है।"

तत्पश्चात् आयुष्मान् महाकाश्यप अपने पाँच सौ भिक्षुओं के झुंड के साथ राजगृह गये। आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती चले गये। अन्य स्थविर भी अपने-अपने झुंड के साथ दिशाओं में प्रस्थान कर दिये और पूर्ण स्थविर सात सौ भिक्षुओं के परिवार के साथ भगवान् के परिनिर्वाण स्थान पर आने वाले लोगों को आश्वासन देने के लिये कुशीनगर में ही रह गये।[1]

१—देखो, सुमङ्गल विलासिनी निदान कथा।

पञ्चम प्रकरण

कुशीनगर की शोभा और उसके अन्य नगर

जिस समय भगवान् कुशीनगर में पधारे थे, उस समय कुशीनगर का नगर-निर्माण अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ था। महापरिनिर्वाण सूत्र से विदित है कि नगर के चारों ओर दृढ़ प्राकार थे। उन प्राकारों में चारों दिशाओं में चार द्वार बने हुए थे, जिनसे लोग नगर में प्रवेश करते और निकलते थे। उत्तरी द्वार से लेकर शालवन उद्यान तक एक शाल-पंक्ति गई थी, जिससे होकर राजमार्ग जाता था। कहते हैं लंका में जैसे कम्बल नदी के तीर से राजमाता- विहार के द्वार से थूपाराम जाना होता है, ऐसे ही हिरण्यवती नदी के परले-तीर से नगर से सम्बन्धित उत्तर ओर शालवन उद्यान था। जैसे अनुराधपुर का थूपाराम है; वैसे ही वह कुशीनगर का शालवन उपवत्तन था। जिस प्रकार थूपाराम से, दक्षिण द्वार हो नगर में प्रवेश करने का मार्ग, पूर्वमुँह जाकर उत्तर की ओर मुड़ता है उसी प्रकार शाल-पंक्ति पूर्वमुँह जाकर उत्तर की ओर मुड़ी थी।

शालवन उद्यान से नगर के दक्षिण जाने का सीधा मार्ग बना हुआ था, जिससे विना नगर में प्रवेश किये ही नगर के दक्षिणी द्वार तक पहुँचा जा सकता था। नगर के दक्षिण में एक नदी बहती थी, जिसके किनारे सम्भवतः कुशीनगर के मल्लों का श्मशान था। प्राचीन काल में प्रायः श्मशान नगर के दक्षिण

और नदी के तीर हुआ करते थे। जब भगवान् का परिनिर्वाण हो गया तब मल्लों ने सोचा कि हम भगवान के शरीर को वहीं ले जाकर दाह-संस्कार करें, जो नगर के दक्षिण अत्यन्त सुन्दर स्थान पर था। जैसे श्रावस्ती नगर के दक्षिण-पश्चिम जेतवन महाविहार था, वैसे ही वह कुशीनगर के दक्षिण-पश्चिम था।

नगर के पश्चिम द्वार पर भी शाल-पंक्तियाँ थीं; जो शालवन उपवत्तन तथा नदी से सटी हुई थीं।

१. मुकुटबन्धन चैत्य

पूर्वी द्वार से लेकर हिरण्यवती के तीर तक एक शालपंक्ति चली गई थी। वहाँ नदी के तीर मुकुटबन्धन नामक कुशीनगर के मल्लों का चैत्य था। पूर्व समय में प्रायः लोग नदियों तथा तालाबों के किनारे ही देवी-देवताओं की पूजा करते थे[1] कुछ समय बाद वहाँ चैत्यों की स्थापना होती गई, ये चैत्य वस्तुतः देवताओं और भूतों के चौरे थे। मूर्ति के अभाव में लोग इन्हीं चैत्यों की पूजा करते थे।

परिनिर्वाण को प्राप्त होने पर भगवान् का दाह-कर्म इसी मुकुटबन्धन चैत्य में हुआ था, वहाँ पर उस समय मल्लों की अभिषेकशाला थी। जिस मल्ल राजकुमार का अभिषेक होता था, वह हिरण्यवती नदी में स्नान कर मुकुटबन्धन चैत्य को पूजा करता और अभिषिक्त होता था। यह हिरण्यवती की पवित्र उज्वल जलधार से पूत हुई भूमि का मुकुट समझा जाता था। आजकल इसका नाम रामाभार है।

१—नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेपि च विधियते -शि० वि०२०,५।

२. नगर की वीथियाँ

कुशीनगर अनेक वीथियों में बँटा हुआ था।[1] उन वीथियों में बहुत से मार्ग (=रथ्या) बने हुए थे। नगर के प्रत्येक भवन उनके किनारे किनारे, पंक्ति-पंक्ति में निर्मित थे।[2] चारों दिशाओं के प्रधान द्वारों से आये हुए मार्ग बीच नगर में मिलते थे।

३. संस्थागार

जहाँ पर मार्ग-सिंघाटक (=चौराहा) था, वहाँ मल्लों का प्रसिद्ध और ऐतिहासिक संस्थागार-भवन था। वह इतना विशाल था कि सभा की बैठक में सभी मल्ल राजा उसमें बैठ सकते थे। भगवान् के परिनिर्वाण हो जाने पर जब दाह-संस्कार हुआ, तब उनकी धातुयें उसी संस्थागार-भवन में रखी गई थीं। भगवान् के परिनिर्वाण के समय जो अनगिनत भिक्षु आये थे, जिनमें केवल अर्हत् ही सात लाख थे, उन्हें उसी भवन में बैठाकर मल्लों ने तीन सप्ताह तक लगातार दान दिया था। संस्थागार-भवन के पास ही बन्धुलमल्ल की भार्य्या मल्लिका के माँ-बाप का घर था।

४. सेना

इस प्रकार हम देखते हैं कि दो नदियों के बीच बसा हुआ कुशीनगर अत्यन्त रमणीय और शोभनीय था। इसके चारों

१—तस्मिं नगरे वीथि आदिसभावेन सन्ती' ति वुत्तं वीथि सभागेन चेव रच्छा सभागेन चाति—टीका।

२—'वीथि सभागेन चेव रच्छा सभागेन च'—अट्ठकथा।

ओर शाल-पंक्तियाँ खड़ी थीं, उन शाल-पंक्तियों से होकर नगर-प्राकार के बाह्य-भाग का परिभ्रमण किया जाता था। नगर के प्रधान द्वारों पर सर्वदा पुरुष (=सिपाही) खड़े रहते थे, जो बाहर से आने और जानेवाले व्यक्तियों की देख-रेख करते थे। नगर हाथी, घोड़ों और रथों से परिपूर्ण था।[१] उनके ऊपर सुनहले कौषेय वस्त्र सुशोभित थे। भाला-बर्छी, धनुष से सुसज्जित सर्वदा सेना तैयार रहती थी। जिस पर मल्लों को घमण्ड था। उसी के बल पर उन्होंने नगाड़ा पीट कर कह दिया था—"चाहे कोई आवे, भगवान् की धातु नहीं देंगे, हममें भी शक्ति है, हम उन्हें देखेंगे।"

५. अन्य नगर

मल्ल राष्ट्र में बहुत से नगर थे और सबका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में कुशीनगर के प्रजातन्त्र राज्य से था। भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् वस्तुतः वे सभी मल्लों के अधीन हो गये थे। बन्धुल मल्ल और दीर्घ-कारायण के असिवाही करों के प्रताप से उनकी शक्ति स्वयं क्षीण हो चली थी।

उन नगरों और ग्रामों में से आम्रग्राम, जम्बूग्राम, भोगनगर, और पावा का वर्णन किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त भी मल्लराष्ट्र में अनेक नगर थे। हमें उनमें से कुछ ही प्रधान निगमों (=कस्बों), नगरों और ग्रामों का पता है।

१. अनूपिया

यह नगर मल्ल जनपद का एक प्रमुख निगम (=कस्बा) था। जब सिद्धार्थ कुमार घर बार छोड़कर निकले थे, तब अनोमा

१—देखो, दीघ नि० अट्ठकथा २,३।

नदी के किनारे अपने राजसी वस्त्रालंकारों को त्यागकर प्रव्रजित हो, इसी निगम में एक सप्ताह व्यतीत किये थे। यहाँ की शाक्या और पद्मा नाम की दो ब्राह्मणियों ने भोजन देकर उनकी सेवा की थीं। यह नगर कपिलवस्तु से ३० योजन दूर शाक्य, कोलिय और रामग्राम जनपदों के बाद अनोमा नदी के सन्निकट इस पार मल्ल राष्ट्र में पड़ता था। अनूपिया से राजगृह ३० योजन था और कुशीनगर से राजगृह २५ योजन तथा कपिलवस्तु ३५ योजन। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनूपिया कुशीनगर से ५ योजन दूर मल्ल राष्ट्र की पश्चिमी सीमा अनोमा नदी के किनारे अवस्थित था।

जिस समय भगवान् बुद्धत्व प्राप्त कर कपिलवस्तु गये थे, उस समय लौटती बार अनूपिया के आम्रवन में ठहरे थे। वहीं अनुरुद्ध, भद्दिय, किम्बिल, भृगु, देवदत्त, आनन्द और उपालि प्रव्रजित हुए थे। दब्बमल्ल की भी प्रव्रज्या अनूपिया में ही हुई थी। "कितना सुख है! कितना सुख है!!" कह कर आरण्य में वास करने वाले कोलिगोधा के पुत्र आयुष्मान् भद्दिय के विषय में भगवान् ने यहीं सुखविहारी जातक[1] को सुनाया था। अनूपिया में भार्गव गोत्र के एक परिव्राजक का मठ था। भगवान् एक दिन वहाँ गये थे और परिव्राजक की शंकाओं को दूर किये थे, जिसका विस्तृत वर्णन पाथिक सूत्र[2] में आया हुआ है।

अनूपिया नगर कहाँ था? अभी तक निश्चित नहीं हो सका। कुशीनगर से उसकी दूरी ५ योजन थी, जो नवीन माप के अनुसार २० मील होगी। अतः अनूपिया नगर को कुशीनगर से पश्चिम मझन (= अनोमा) नदी के तीर कहीं होना चाहिये। सम्भवतः ढाढ़ा के पास मझन नदी के किनारे

---

१. जातकट्ठकथा १०। २. दीघनिकाय ३ १।

का खँडहर ही अनूपिया नगर है, जिसे आजकल 'घोड़टप' कहते हैं, वस्तुतः घोड़टप घोड़े के टापने (= कूदने) वाले स्थान को सूचित कर रहा है, वहीं पर घोड़े सहित सिद्धार्थ ने अनोमा नदी टापा (= लाँघा) था। चीनी यात्री फाहियान और हुएनसांग दोनों यहाँ आये थे। फाहियान ने रामग्राम से इसकी दूरी ३ योजन तथा हुएनसांग ने १०० ली लिखी है। जो इस समय रामग्राम से १४ मील दूर है। फाहियान ने लिखा है "रामग्राम से तीन योजन पूर्व चलकर राजकुमार के छन्दक के साथ श्वेत अश्व को लौटाने का स्थान मिला। वहां स्तूप बना था।" हुएनसांग ने भी लिखा है—"रामग्राम से १०० ली पूर्व एक विकट बन में एक बड़े स्तूप के पास पहुँचे। यहाँ अशोक-स्तूप बना है। यह वही स्थान है, जहाँ पर भगवान् ने सारथी को लौटाया था तथा अपने वस्त्र-आभूषण को त्यागा था।" अभी तक इसकी खोदाई नहीं हुई है। आशा है खोदाई के पश्चात् यह स्थान प्रकाश में आयेगा।

२. थूण ग्राम

यह ग्राम मल्लराष्ट्र की पूर्वी सीमा पर था। अट्ठकथा[१] में आया है कि यह मध्यदेश की पूर्वी-दक्षिणी सीमा पर मल्लदेश में अवस्थित था, किन्तु अट्ठकथा का पाठ असंगत और अशुद्ध जान पड़ता है। थूणग्राम मल्ल देश की पूर्वी सीमा पर था, न कि मध्यदेश की दक्षिणी-पूर्वी सीमा पर।

यह ब्राह्मणों का एक ग्राम था। यहाँ के ब्राह्मण बड़े दुष्ट थे। जब भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ घूमते हुए यहाँ पहुँचे थे, तब यहाँ के ब्राह्मणों ने कुएँ को घास-भूसा से ऊपर तक

१. उदानट्ठकथा७,९।

भर दिया था कि मथमुण्डे साधु पानी पीने न पावें। उस समय भगवान् के तेज और प्रताप से कुएँ के घास और भूसा उड़ कर बाहर निकल आये और वे स्वच्छ, निर्मल जल के स्रोत से लबालब भर गये !

इसी नाम का एक दूसरा भी ग्राम मध्यदेश की पश्चिमी सीमा पर था; जिसे आजकल थानेश्वर कहते हैं।

३. उरुवेलकप्प

इस नगर के पास एक बहुत बड़ा जगंल था, जिसका नाम महावन था। जहाँ भगवान् दोपहर के भोजन के पश्चात् गये थे और तपस्सु आकर उनसे मिला था, तब वे उसे दुःख की उत्पत्ति और अन्त का उपदेश दिये थे।[1] उरुवेलकप्प निगम के बाहर एक बहुत बड़ा विद्यालय था, जहाँ पर कि तपस्सु का पुत्र 'चिरवासी कुमार' विद्याध्ययन कर रहा था।

एक समय भगवान् उरुवेलकप्प निगम में विहरते हुए भिक्षुओं को श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय और समाधि-इन्द्रिय की स्थिरता के विषय में उपदेश दिये थे।[2]

४. बलिहरण वनखण्ड

यह कोई नगर या गाँव नहीं, अपितु शालवन का एक भाग था। इसके किनारे-किनारे बहुत से छोटे-छोटे गाँव थे। यह

---

१. युत्तनिकाय ४, ४०, ११ और अंगुत्तर निकाय ९, ४, १०।
२. संयुत्त निकाय ४६, ६, २।

कुशीनगर के सन्निकट ही था। भगवान् अनेक बार इसमें विहार किये थे। इसी में विहार करते समय उन्होंने भिक्षुओं को किन्ति सुत्तन्त[1] का उपदेश दिया था। कैसे भिक्षाटन जाना चाहिए और किस प्रकार मिलजुल कर रहना चाहिए[2] आदि बातों को बलिहरण वनखण्ड में ही बतलाया था।

---

१. मज्झिम नि० ३, १, ३।

२. अंगुत्तर नि० ३, ३, १—२।

षष्ठ प्रकरण

कुशीनगर की महान् विभूतियाँ

(ई० पूर्व ७००-४०० तक)

मल्लराष्ट्र की सारी प्रजा सुखी और प्रसन्न थी। जिस समय (ई० पूर्व १०००-६००) सारे भारत में हिंसा, शोषण और व्यभिचार ने जोर पकड़ा था, उस समय भी यह प्रदेश अपना आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहा था। सम्भवतः गणतन्त्र राज्य की स्थापना उस समय हो चुकी थी। उस गणतन्त्र राज्य के प्रारम्भ-काल से लेकर बुद्ध-काल पर्यन्त इसमें अनेक महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुईं और अपने पवित्रतम् कार्यों की समाप्ति के साथ अतीत के अन्तस्थल में समा गईं! जिन महान् व्यक्तियों के कारण यह राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के सम्मुख दृष्टान्त बना हुआ था, वे प्रायः विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गईं। मल्ल-भूमि भाग्य-शालिनी होती हुई भी अपने सुपुत्रों के प्रति उपेक्षा कर गई!

जिन व्यक्तियों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से था, जो भगवान् को शरण गये थे अथवा उनके दर्शन कर अपने जीवन को कृतकृत्य कर सके थे, उनमें से कुछ के वर्णन पालि त्रिपिटक और अट्ठकथा ग्रन्थों में मिलते हैं। उन महान् व्यक्तियों के जीवन-चरितों को पढ़कर हममें एक प्रकार का विचित्र उद्बोधन होता है। हम उनके चरण-चिन्हों पर चलने के लिये अपने को अनुप्राणित करने का प्रयत्न करते हैं।

१. दब्ब स्थविर

दब्ब स्थविर का जन्म कुशीनगर के मल्ल राजवंश में हुआ था। जब वे अपनी माँ के पेट में ही थे कि उनकी माँ का देहान्त हो गया। घर के लोग शोकार्त्त और दुःखित मन उनकी माँ के मृत शरीर को श्मशान में ले गये। चिता बनाई गई और उस पर मृत शरीर रख दिया गया। चिता भभक-भभक कर जलने लगी। अग्नि की लपटों के वेग से मृत माँ का पेट फट गया और अपने पूर्व जन्म के सञ्चित पुण्य-सम्भार से नन्हे से बालक दब्ब उन भयङ्कर अग्नि-ज्वालाओं से बच कर चिता के किनारे एक तृण पुञ्ज पर जा गिरे। लोगों ने उन्हें उठा लिया और उनको नानी को पालन-पोषण करने के लिये दिया। उसने उनका नाम दब्ब कुमार रखा, जो पीछे मल्ल-पुत्र दब्ब के नाम से प्रख्यात हुए।

जिस समय दब्ब सात वर्ष के बालक थे और अपनी ननिहाल अनूपिया निगम (=कस्बा) में बाल-क्रीड़ा कर रहे थे; उसी सयय भगवान् भिक्षु संघ के साथ मल्ल जनपद में घूमते हुए अनूपिया आये। दब्ब-कुमार भगवान् के प्रशान्त, दिव्य और आनन्दमय मुख-मण्डल को देखकर प्रसन्न हो उठे तथा प्रव्रजित होने की उत्कट अभिलाषा से अपनी नानी के पास जाकर कहे—"माँ, मैं भगवान् के पास प्रव्रजित होऊँगा।"

१—अर्थकथाओं में अनूपिया के मल्ल राजवंश में-पाठ मिलता है, किन्तु वह दब्ब स्थविर का ननिहाल था। मूलपालि ग्रन्थों में कुशीनगर का ही वर्णन है। यथा 'मल्लेसु कुसिनारायं गब्भे जातस्स मे सतो'—अपदान पालि और थेरगाथट्ठ० १,१,५।

"बहुत अच्छा पुत्र !" नानी ने यह सोच कर कहा कि प्रव्रजित होकर अच्छे आचरणों को सीखेगा और यदि इसका मन श्रमण-धर्म में नहीं लगेगा, तो स्वयं लौट आयेगा।[१]

शास्ता ने दब्ब कुमार को एक भिक्षु द्वारा प्रव्रजित कराया। कहते हैं प्रव्रजित होने के समय जब उनके शिर के बाल बन रहे थे तभी उन्होंने पूर्व जन्म के किये हुए पुण्य के प्रताप से अर्हत्व पा लिया।

मल्लराष्ट्र में इच्छानुरूप रह कर भगवान् राजगृह गये। वहाँ वेणुवन महाविहार में रहते समय दब्बस्थविर ने भगवान् के पास आकर प्रणाम् किया और कहा - "भन्ते, में संघ के शयनासन का प्रबन्ध करना चाहता हूँ। "भगवान् ने उन्हें साधुकार देकर उक्त पद पर नियुक्त कर दिया। वहीं उनकी उपसम्पदा भी हुई।

दब्ब स्थविर उपसम्पन्न होने के समय से लेकर राजगृह में रहने वाले सब भिक्षुओं के लिये शयनासन का प्रबन्ध करते थे, उनके शयनासन के प्रबन्ध करने की बात सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई। वे भिक्षुओं के परिचित और मित्रों का आसन एक जगह लगाते थे। उनके रहने, बैठने और वार्तालाप करने की सारी व्यवस्था का विचार करते हुए ही आसन लगते थे। जहाँ वे पैदल नहीं जा सकते थे, वहाँ ऋद्धिबल से जाकर अपना कार्य-सम्पादन करते थे। भिक्षु असमय में भी आकर उनके ऋद्धि बल को देखने के लिये कहते थे—"आवुस, हमारे लिये जीवक के आम्रवन में आसन ठीक करो, हमारे लिये मद्रकुक्षि मृगदाय में।" और उनके ऋद्धि-बल को देखकर अश्चर्य चकित होते थे।

---

१ – उदान अट्ठकथा ८-९।

कहते हैं दब्ब स्थविर अपने मनोमय ऋद्धिबल से अनेक शरीर हो जाते थे और प्रत्येक भिक्षु के साथ जाकर अपनी अंगुली के ऋद्धि-मय प्रकाश से आसन ठीक करके उन भिक्षुओं को सौंप कर पुनः वेणुवन चले आते थे।[१]

भगवान् ने दब्ब स्थविर के ऐसे कार्यों को देखकर प्रसन्न हो, सारे भिक्षु संघ को एकत्र कराया और दब्ब स्थविर के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा—'भिक्षुओ, मेरे शयनासन प्रज्ञापक (=प्रबन्धक) भिक्षु-श्रावकों में यह मल्लपुत्र दब्ब अग्र (=श्रेष्ठ) है।"[२]

दब्ब स्थविर के महापद की प्राप्ति से मेत्तिय और भुम्मजक भिक्षुओं को डाह होने लगी। वे नाना प्रकार से इन पर दोषा-रोपण करने लगे। पाराजिका आदि की आपत्तियों से उन्होंने आक्षेप किया।[३] किन्तु दब्ब स्थविर बाल ब्रह्मचारी थे, सात वर्ष की ही अवस्था में जीवनमुक्त हो गये थे, उनपर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। जब वे भिक्षु संघ में बुलाये गये, तब उन्होंने मानों गर्जते हुए कहा—"भन्ते मैं स्वप्न में भी मैथुन धर्म के सेवन की बात नहीं जानता, जागते समय की बात ही क्या?" राजगृह के वेणुवन महाविहार में ही रहते समय एक दिन दब्बस्थविर भगवान् के पास गये और प्रणाम् करके कहे—"भगवान्! अब मेरे परिनिर्वाण का समय आ गया।"

"दब्ब! जैसा उचित समझो।" भगवान् ने कहा।

तब आयुष्मान् दब्ब भगवान् को प्रणाम् तथा प्रदक्षिणा कर

१—विस्तार के लिए देखो—पाराजिका पालि २,८।

२—अंगुत्तर निकाय १,२।

३—विस्तार के लिये देखो पाराजिका पालि २,८।

आकाश में उठ, वहीं आसन लगा, बड़े तेज से जलते हुए परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। जैसे घी या तेल के धधक कर जल जाने पर उसके भस्म और कोयले का पता नहीं लगता है, वैसे ही उनके शरीर के भस्म और कोयले का पता न लगा।

यह देखकर भगवान् से न रहा गया। उस समय उनके मुँह से उदान (=प्रीति-वाक्य) के ये शब्द निकल पड़े—'(दब्ब ने) शरीर को छोड़ दिया, उसकी संज्ञा निरुद्ध हो गई, वह सारी वेदनाओं को बिल्कुल जला दिया, उसके सम्पूर्ण संस्कार शान्त हो गये और विज्ञान अस्त हो गया।'[१]

२. आयुष्मान् सिंह

आयुष्मान् सिंह का जन्म कुशीनगर के मल्ल-राजवंश में हुआ था। जिस समय भगवान् सर्व प्रथम कुशीनगर पधारे थे, उस समय वे भगवान् को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और प्रणाम् कर एक ओर बैठ गये। भगवान् ने उनके विचारों को देखते हुए धर्म का उपदेश दिया। वे उपदेश सुनकर उनके पास प्रव्रजित हो गये और योगाभ्यास के नियमों को सीखकर आरण्य में विहार करने लगे।

बहुत दिन बीत गये, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली, उनका चित्त नाना विषयों की ओर दौड़ता था। एकाग्र नहीं हो पाता था। भगवान् ने इस विषम परिस्थिति को देखा और आकाश में खड़े होकर कहा—"सिंह! तू रात-दिन अप्रमाद के साथ विहार करो, आलसी मत बनो, कुशल धर्मों की भावना करते हुए शीघ्र उत्पत्ति-मृत्यु के बन्धन वाले इस शरीर को छोड़ दो।"[२]

१—उदान ८,९।

२—थेर गाथा १,९,३।

आयुष्मान् सिंह भगवान् के वचन को सुनकर, विपश्यना करके शीघ्र अर्हत्व पा लिये और सुख पूर्वक विहरते हुए आयु के समाप्त हो जाने पर परिनिर्वृत हो गये।

३. यशदत्त स्थविर

यशदत्त स्थविर का भी जन्म कुशीनगर के मल्ल राजवंश में ही हुआ था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा कुशीनगर के विद्यालय में समाप्त कर तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये चले गये थे। वहाँ उन्होंने पूर्ण रूप से शिक्षा पाई और तत्कालीन शिल्पों में निपुणता हासिल कर ली।

तक्षशिला से लौटती बार सभिय परिव्राजक के साथ आते हुए श्रावस्ती पहुँचे। वहाँ आने पर सभिय ने भगवान् से प्रश्न पूछा।[१] जिस समय भगवान् सभिय के छे प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे, उस समय यशदत्त भी भगवान् द्वारा दिये जाते उत्तरों में दोष देखने के विचार से बैठे सुन रहे थे। भगवान् ने उनके आशय को जान कर सभिय-सूत्र के उपदेश के पश्चात् कहा—"जो दुर्मेध दोषारोपण करने के विचार से उपदेश सुनता है, वह सद्धर्म से उसी प्रकार दूर जा पड़ता है, जिस प्रकार कि आकाश और पृथ्वी दूर-दूर हैं और जो प्रसन्न मन से उपदेश सुनता है, वह सभी आस्रवों (=मलों) का खतम करके परम शान्ति निर्वाण को पा लेता है।[२]

इस प्रकार भगवान् के उपदेश को सुन कर वे बहुत संविग्न हुए और प्रव्रजित होकर शीघ्र ही अर्हत्व पा लिये। उनका जीवन विमुक्ति सुख के साथ ही सर्वदा के लिये बुझ गया।

१—सुत्त निपात ३,६।

२—देखो विस्तार के लिए, थेरगाथा ५,१,१०।

४. बन्धुल मल्ल

बन्धुल मल्ल का जन्म कुशीनगर के मल्ल-राजवंश में हुआ था। वह कुशीनगर के विद्यालय में अपनी शिक्षा समाप्त कर तक्षशिला के विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये चला गया। जिस दिन बन्धुल मल्ल तक्षशिला पहुँचा, उसी दिन श्रावस्ती के महाकोशल राजा का पुत्र प्रसेनजित कुमार और वैशाली का लिच्छवि-कुमार महाली भी वहाँ शिक्षार्थ पहुँचे। तीनों से नगर के बाहर एक धर्मशाला में भेंट हुई। वे आपस में एक दूसरे के आने का कारण, कुल और नाम पूछ कर मित्र बन गये और एक ही साथ आचार्य के पास जा, शीघ्र ही विद्या समाप्त कर आचार्य से आज्ञा ले एक ही साथ निकलकर अपने-अपने स्थान को गये।

उनमें प्रसेनजित कुमार अपने पिता को विद्या दिखाई और राजा ने प्रसन्न होकर उसका राज्य-अभिषेक कर दिया।

महाली कुमार की लिच्छवियों को अपनी विद्या दिखाते समय बहुत बल के साथ दिखाने के कारण, आँखें फूट कर निकल गईं। लिच्छवी राजाओं ने—"अहो! हमारे आचार्य की आँखें फूट गईं, इन्हें नहीं छोड़ना चाहिये, इनकी सेवा करनी चाहिये।" सोच कर चुङ्गी से एक लाख आय वाले नगर के एक द्वार को दिया। वह वहीं रहकर पाँच सौ लिच्छवी राजकुमारों को विद्या-सिखाते हुए रहने लगा।

बन्धुल राजकुमार को मल्ल-राजकुल ने प्रत्येक बांस में लोहे की शलाका डाल, खड़ाकर साठ-साठ बाँसों के साठ कलापों को तलवार से काटने को कहा। वह आकाश में अस्सी हाथ उछल कर तलवार से काटने लगा। अन्तिम कलाप में उसने लोहे की शलाका के खनखनाने का शब्द सुनकर पूछा और

सभी कलापों में लोहे की शलाका के रखी होने की बात जान तलवार को फेंक रोते हुए कहा—"मेरे इतने जाति-सुहृदयों में से एक ने भी स्नेह-युक्त हो इस बात को न बतलाया। यदि मैं जानता तो लोहे की शलाका के बिना शब्द हुए ही काटता।"

उसने घर जाकर अपने माँ-बाप से कहा—"अब मैं इन सब मल्लों को मारकर राज्य करूँगा।"

"पुत्र! यह प्रवेणी (=वंशानुगत) राज्य है, यहाँ ऐसा नहीं कर सकते।" माँ-बाप ने यह कह कर रोका।

"तब तो मैं अपने मित्र के पास जाऊँगा।" कह कर बन्धुल मल्ल श्रावस्ती चला गया। प्रसेनजित ने उसके आगमन की बात सुन कर अगवानी की और बड़े सत्कार से नगर में प्रवेश करा सेनापति के पद पर सुशोभित किया। पीछे बन्धुल मल्ल कुशीनगर से अपने माँ-बाप को बुलवाकर वहीं बस गया।

बन्धुल मल्ल का विवाह भी कुशीनगर की एक राजकुमारी से हुआ था। उसका नाम था मल्लिका। मल्लिका को बहुत दिनों तक कोई सन्तान न हुई। तब बन्धुल ने उसे अपने माँ-बाप के घर कुशीनगर जाने के लिये बिदा कर दिया। वह भगवान् का दर्शन करके ही कुशीनगर जाने के विचार से जेतवन महाविहार में जा तथागत को प्रणाम् कर खड़ी हो गई। तब भगवान् ने पूछा—"तुम कहाँ जा रही हो?"

"भन्ते, मेरा पति मुझे पीहर भेज रहा है।" मल्लिका ने कहा।

"किस कारण से?"

"मैं बाँझ हो गई हूँ।"

"यदि यही बात है तो तुम मत जाओ।"

वह प्रसन्न मन तथागत को प्रणाम् कर घर लौट गई। बन्धुल ने उसके वापस आने का कारण पूछा और यह जान कर कि भगवान् ने इसे लौटाया है; सोचा कि दीर्घदर्शी भगवान् द्वारा भविष्य देखा गया होगा।"

कुछ ही दिनों में मल्लिका को गर्भ हुआ। उसने बन्धुल से कहा—"स्वामी! मुझे दोहद (=गर्भिणी की किसी चीज़ की इच्छा) उत्पन्न हुआ है।"

"क्या दोहद है?" बन्धुल ने पूछा।

"स्वामी, मैं वैशाली नगर में गणतन्त्र राजाओं के कुल की अभिषेक करने वाली पुष्पकरिणी में उतर नहाकर पानी पीना चाहती हूँ।"

बन्धुल "बहुत अच्छा" कह, सहस्र मनुष्यों के बल से नमने वाले धनुष को लेकर मल्लिका को रथ पर चढ़ा श्रावस्ती से निकला। वह रथ हाँकते हुए महाली लिच्छवी को दिये द्वार से वैशाली में प्रविष्ट हुआ। महाली लिच्छवीका द्वार के समीप ही घर था, जब उसने चौखट से रथ के रगड़ का शब्द सुना, तब कहा कि यह बन्धुल मल्ल के रथ का शब्द है, आज अवश्य लिच्छवियों पर आफ़त पड़ेगी।

वहाँ की पुष्करिणी के भीतर और बाहर बड़ा जबर्दस्त पहरा था, ऊपर लोहे का जाल बिछा हुआ था, पक्षी के जाने का भी स्थान न था। बन्धुल सेनापति ने रथ से उतर कर बेंत से पहरे वालों को पीट भगाया। लोहे के जाल को काट डाला और पुष्करिणी में मल्लिका को नहलाकर स्वयं भी नहा, रथ पर जा बैठा। अब रथ को मोड़ा और आने के रास्ते से ही चल दिया।

पहरे वालों ने जाकर यह सब समाचार लिच्छवियों से कहा। लिच्छवी राजा क्रुद्ध हो, पाँच सौ रथों पर आरूढ़ होकर बन्धुलमल्ल को पकड़ने के लिये निकले। लोगों ने उस समाचार को महाली को सुनाया। महाली ने कहा—'तुम लोग मत जाओ, बन्धुल मल्ल मेरा सहपाठी है, मैं उसके बल और पराक्रम को जानता हूँ, वह अकेले ही तुम सबको मार डालेगा। किन्तु उन्होंने महाली की एक न सुनी और बन्धुल मल्ल का पीछा करना प्रारम्भ कर दिया।

मल्लिका ने पीछे से आते हुए रथों को देखकर कहा—"स्वामी, रथ आते हुए दिखा दे रहे हैं।"

"अच्छा, जब सब रथ एक पंक्ति में हो जाँय और एक ही रथ सा जान पड़ें, उस समय मुझे कहना।" बन्धुल ने कहा।

जब सब रथ एक पंक्ति में होगये तब मल्लिका ने बन्धुल से कहा। बन्धुल मल्ल रस्सियों को मल्लिका को दे, रथ पर खड़ा होकर धनुष पर तीर चढ़ाया। रथ का चक्का नाहे तक जमीन में घुस गया। लिच्छवियों को एक पंक्ति में आते हुए देखकर उसने तीर छोड़ा। बादल के गरजने के समान शब्द हुआ। वह तीर देखते-देखते ही पाँच सौ रथों पर बैठे लिच्छवियों के शिर पर बँधी पगड़ी को छेदकर पृथ्वी में जा घुसा! वे लिच्छवी अपने तीर-लगने की बात न जानकर "अरे, ठहरो! ठहरो!" चिल्लाते हुए उसके पीछे दौड़ ही रहे थे।

बन्धुल मल्ल ने रथ को खड़ा कर कहा "तुम सब मृतक हो, मृतकों के साथ मैं युद्ध नहीं करता।"

"अरे! हम लोगों के ही ऐसे मृतक होते हैं?"

"अच्छा, तुम लोग सबसे आगे वाले रथ पर बैठे हुए की पगड़ी खोलो।"

लिच्छवियों ने मारे क्रोध के शीघ्र खोला। पगड़ी के खुलते ही वह वीर लिच्छवी मर कर रथ में पड़ रहा। तब बन्धुल मल्ल ने उन सबको समझाया और कहा कि तुम सब ऐसे ही मारे गये हो। अब तुम लोग अपने-अपने घर जाकर, घर का सारा कार्य अपने बाल-बच्चों को बतलाकर पगड़ी खोलना। वे वैसा करके सब मर गये।

बन्धुल मल्लिका को लेकर श्रावस्ती गया। उसने सोलहबार जोड़े-पुत्र जने। उसके वे सभी पुत्र विद्या (=शिल्प) में निष्णात् और शूर-वीर हुये। एक-एक के साथ हजार-हजार आदमी रहते थे। अपने पिता के साथ राजभवन जाने पर उन्हीं से राजाङ्गण परिपूर्ण हो जाता था।

एक दिन मनुष्यों ने बन्धुल मल्ल को आते देखकर बड़ी दोहाई दे, न्यायाधीशों के रिश्वत ले फैसला करने की बात कही। उसने अदालत में जा, उस झगड़े का फैसलाकर, स्वामी ही को स्वामी बनाया। लोगों ने बड़े जोरों से साधुवाद दिया। राजा ने साधुवाद के कारण को पूछ, जानकर सन्तुष्ट हो, उन सभी अमात्यों को हटा, बन्धुल को ही न्याय-विभाग सौंप दिया। वह उस समय से ठीक ठीक न्याय करने लगा। पुराने न्याय-धीशों ने रिश्वत न पाने से "बन्धुल राज्य ले लेना चाहता है" कहकर राजकुल में फूट डाल दी। राजा उनकी बात मानकर, अपने मन को न रोक सका, और "इसको यहीं मारने से बड़ी निन्दा होगी" सोचकर, सीमान्त में अपने आदमियों को भेज बलवा करा, बन्धुल मल्ल से कहा—"सीमान्त में बलवा हो गया है, तुम अपने पुत्रों के साथ जाकर बलवाइयों को पकड़ो।"

बन्धुल मल्ल अपने पुत्रों के साथ वहाँ गया और सीमान्त में बढ़े उपद्रव को शांत करके लौट पड़ा। घर प्रसेनजित के बहुत

से योद्धाओं को यह कह कर भेजा कि तुम लोग जाकर मार्ग में छिप जाओ और जब बन्धुल आये तब उसे उसके पुत्रों के साथ मार डालो।

जब बन्धुल श्रावस्ती के पास आ गया, तब उन योद्धाओं ने बत्तिस पुत्रों के साथ बन्धुल मल्ल का शिर काट लिया और वह वीर मल्ल-सेनानी सर्वदा के लिये इस लोक से कूच बोल दिया।

पीछे चरपुरुषों ने राजा को बन्धुल मल्ल और उसके पुत्रों के निर्दोष होने का बात कही। राजा ने संविग्न हो उसके घर जा, मल्लिका और उसकी बहुओं से क्षमा माँगी। मल्लिका अपनी बहुओं को उनके पीहर भेज स्वयं अपने माँ-बाप के घर कुशीनगर लौट आयी।

५. दीर्घकारायण

दीर्घकारायण का जन्म कुशीनगर में ही हुआ था। वह बन्धुल मल्ल का भाञ्जा था। जब प्रसेनजित ने पुत्रों सहित बन्धुल मल्ल को मरवा डालने के पश्चात् उसे निर्दोष जाना तब उसने बन्धुल मल्ल के भांजे दीर्घकारायण को सेनापति का पद दिया।

दीर्घकारायण को अपने निर्दोषी मामा के मारे जाने का बहुत बड़ा हार्दिक दुःख था। वह इसका बदला लेने का मौका ढूंढ़ रहा था। राजा भी निरपराध बन्धुल के मारे जाने के समय से हो, खिन्न हो चैन न पाता था। उसे राज्य-सुख में मन नहीं लगता था।

उस समय भगवान् शाक्यों के उलुम्प[१] नामक निगम

१—मज्झिम निकाय अट्ठकथा २,४,९ में 'मेतलूप' पाठ है। यह निगम शाक्यों के नागरक निगम से ३ योजन दूर पड़ता था।

(=कस्बा में विहार करते थे। राजा वहां जा, विहार से थोड़ी दूर पर पड़ाव डाल, थोड़े से लोगों के साथ विहार में जा, छत्र, व्यजन, उष्णीष, खड्ग, पादुका—इन पांच राजसी-वस्तुओं को दीर्घकारायण को दे, अकेला ही गन्ध-कुटी में प्रवेश किया। उसके गन्ध-कुटी में जाते ही, कारायण उन राजसी वस्तुओं को ले विडूडभ को राजा बना, प्रसेनजित के लिये एक घोड़ा और एक सेविका छोड़, श्रावस्ती चला गया।

राजा प्रसेनजित भगवान् के साथ बहुत देर तक बातचीत करके बाहर निकला। देखा तो वहाँ सेना न थी और न तो सेनापति आदि ही। उसने सेविका से पूछा। जब सारी बात मालूम हुई, तब अपने भांजे अजातशत्रु की सहायता से विडूडभ को पकड़ने की बात सोच, राजगृह के लिए प्रस्थान कर दिया।

वह जिस समय राजगृह पहुँचा, उस समय सन्ध्या हो गई थी, नगर का द्वार बन्द हो चुका था। अतः प्रसेनजित बाहर एक धर्मशाला में ठहर गया। धूप हवा में थका में होने से रात में वहीं मर गया।

इधर शाक्यों का संहार कर विडूडभ ने अपनी सेना के साथ रात के समय अचिरवती (=राप्ती) नदी के तट पर पहुँच, छावनी डाली। कोई-कोई नदी के भीतर बालू पर लेटे, तो कोई-कोई बाहर स्थल पर। उस समय मेघ ने उठकर घना ओला बरसाया और नदी में आई बाढ़ ने सेना सहित उसे समुद्र में पहुँचा दिया![1]

सम्भवतः दीर्घकारायण भी इन्हीं के साथ मत्स्य-कच्छपों का आहार बन गया!

१—धम्मपदट्ठकथा ४,३ और मज्झिम नि० अट्ठ० २,४,९।

६. रोजमल्ल

रोजमल्ल का जन्म कुशीनगर के मल्ल-राजकुल में हुआ था। वह वहाँ के गणतन्त्र राज्य का एक प्रसिद्ध सदस्य और राजा था।

एक समय भगवान् मल्लराष्ट्र में घूमते हुए कुशीनगर की ओर आ रहे थे। कुशीनगर के मल्लों ने सुना कि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के महासंघ के साथ भगवान् यहाँ आ रहे हैं, तब उन्होंने नियम बनाया कि 'जो भगवान् की अगवानी करने के लिये नहीं जायेगा, उसे पाँच सौ दण्ड होगा।'

रोजमल्ल आयुष्मान् आनन्द का मित्र था। जब भगवान् कुशीनगर पहुँचे, तब वह भी भगवान् की अगवानी कर आयुष्मान आनन्द के पास गया। उन्हें प्रणाम् कर एक ओर खड़ा हो गया। आयुष्मान आनन्द ने कहा—"आवुस रोज! यह तेरा कृत्य बहुत सुन्दर है, जो कि तूने भगवान् की अगवानी की।"

"भन्ते, आनन्द! मैंने बुद्ध, धर्म, संघ का सम्मान नहीं किया; प्रत्युत बिरादरी के दण्ड के भय से ही मैंने भगवान् की अगवानी की।"

यह सुनकर आयुष्यमान् आनन्द को अप्रसन्नता हुई और वे भगवान् के पास जाकर कहे—"भन्ते, रोजमल्ल विभव-सम्पन्न, ख्याति-प्राप्त मनुष्य है। इस प्रकार के मनुष्यों का इस धर्म में प्रसाद (=श्रद्धा) होना अच्छा है। आप ऐसा करें कि रोजमल्ल इस धर्म में प्रसन्न होवे।"

तब भगवान् ने रोजमल्ल के प्रति मित्रता-पूर्ण चित्त उत्पन्न कर आसन से उठ विहार में प्रविष्ट हुए। रोजमल्ल भगवान् के

मैत्री-चित्त के स्पर्श से छोटे बछड़े वाली गाय की भाँति एक विहार से दूसरे विहार, एक परिवेण से दूसरे परिवेण में भगवान् को खोजता हुआ, उनके पास जाकर प्रणाम् कर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसे उपदेश दिया। वह उपदेश को सुनकर स्रोतापन्न हो गया। रोज ने स्रोतापन्न होकर भगवान् से कहा—

"अच्छा हो भन्ते! भिक्षु लोग मेरा ही चीवर, भिक्षा, आसन, दवा-दारू ग्रहण करें; अन्य का नहीं।"

"रोज! तेरी तरह जिन्होंने अपूर्ण-ज्ञान और अपूर्ण-दर्शन से धर्म देखा है, उन्हें ऐसा ही होता है।"—भगवान् ने कहा।

उस समय कुशीनगर की सारी जनता भिक्षु संघ को दान दे रही थी। निमन्त्रण पर निमन्त्रण मिले हुए थे। रोजमल्ल दान देना चाहते हुए भी मौका नहीं पाता था। तब उसने अन्य लोगों के दान के समय ही मिठाई तथा साग तैयार करा भिक्षु संघ को दान दिया।[1] तब से लेकर रोजमल्ल आयु पर्यन्त धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगा। वह भिक्षु-संघ को दान देते, शीलों का पालन करते हुए अन्त में स्वर्ग-परायण हुआ।

७—वज्रपाणि मल्ल

यह कुशीनगरवासी एक मल्ल राजा था। जिस समय भगवान् के सन्निकट परिनिर्वाण का समाचार कुशीनगर के मल्लों को मिला और वे दौड़े हुए शालवन उपवत्तन में आये, तब वज्रपाणि मल्ल यह कहते हुए बेहोश होकर गिर पड़ा था "हा! तथागत!! आप परिनिर्वृत हो गये!!! जन्म-मरण के समुद्र से पार करने के लिये अब कौन हमको नौका प्रदान करेगा? इस अज्ञान

१—महावग्ग ६।

निशा के अन्धकार में कौन हमको प्रकाश देकर सन्मार्ग पर ले जायेगा ?"

वज्रपाणि मल्ल वीर और गदाधारी था। सर्वदा हीरक-गदा उसके हाथ में रहती थी। भगवान् के निर्वाण-स्थल पर उसने अपनी गदा फेंक दी थी और बेसुध हो भूमि-शय्या कर ली थी। पीछे मल्लों ने वहाँ पर उसकी स्मृति में स्तूप बनाया था।[1]

८—वीराङ्गना मल्लिका

मल्लिका कुशीनगर के मल्ल-राजवंश की वीर-पुत्री थी। उसकी शिक्षा कुशीनगर में ही हुई थी। वह युद्ध करने और रथ हाँकने में बड़ी निपुण थी। धैर्य की तो मानो पुतली ही थी।

जिस समय बन्धुल मल्ल तक्षशिला से पढ़कर लौटा और कुशीनगर में अपनी शिल्प-कला का परिचय दिया, उस समय मल्लिका का उसके साथ स्वयंवर रचाया गया और बन्धुल के कुशीनगर से श्रावस्ती जाते समय वह भी वहाँ चली गई।

जैसा कि पहले बताया गया है—मल्लिका को देर तक सन्तान न हुई। उसे बाँझ समझकर बन्धुल ने घर से निकाल दिया। वह कुशीनगर जाने की तैयारी करके भगवान् का दर्शन करने गई और उनके मना करने पर घर लौट आई।

अब उसे गर्भ रह गया और उसका मन अद्भुत बातों की ओर झुकने लगा। उसने पति से कहा—"मेरा जी करता है, वैशाली नगर में गण-राज कुलों की जो अभिषेक-मङ्गल पुष्करिणी है, उसमें उतर कर नहाऊँ और पानी पिऊँ !" वह एक अद्भुत स्त्री थी ! उस समय किसी बाहरी आदमी के लिये वैशा-

१—ह्वुएनसांग का भारत भ्रमण, पृष्ठ ३०९।

ली की उस पुष्करिणी में उतरना मौत से खेलना था, लेकिन बन्धुल अपनी स्त्री की बात को कैसे टाल सकता था?

जब उस प्रसंग में उसे लिच्छवियों से लड़ना पड़ा, मल्लिका उसके रथ की बागें थामे हुए सारथी का काम करती रही! और वे दोनों लिच्छवियों की पुष्करिणी में नहाकर ही लौटे।

पीछे मल्लिका बत्तिस पुत्रों की माता बनी। जिस समय राजा प्रसेनजित ने अपने विश्वस्त सेनापति बन्धुल को उसके सब पुत्रों के साथ ईर्ष्या के मारे धोखे से मरवा दिया, उस समय मल्लिका पांच सौ भिक्षु संघ के साथ अग्रश्रावकों को भोजन के लिये निमन्त्रित की थी।

प्रातःकाल ही उसे पत्र मिला—"सेनापति बन्धुल मल्ल अपने सब पुत्रों सहित मार डाला गया।" मल्लिका ऐसी वीराङ्गना थी कि अपने प्रिय पुत्रों और पति की मृत्यु का समाचार पाकर भी शोकार्त्त न हुई। वह उस पत्र को आँचल में रख ली, किसी को भी उसे न बतलायी।

दोपहर में भिक्षु संघ को भोजन परोसते समय एक दासी से घी का मटका फूट गया। अग्रश्रावक सारिपुत्र ने कहा—"फूटनेवाली चीजें फूटती ही हैं, चिन्ता न करो।"

तब मल्लिका ने अपने आँचल से उस पत्र को निकालकर उन्हें देते हुए कहा—"मैं ऐसे समाचार को पाकर भी चिन्ता नहीं करती, घी के मटका के फूटने पर क्या चिन्ता करूँगी?"

भिक्षुओं के जाने के पश्चात् उसने अपने बत्तिस बहुओं को बुलवाया और समझाते हुए कहा—"तुम्हारे पति निर्दोषी थे, वे अपने पूर्व जन्म के किये कर्मों का फल पाये, तुम लोग मत शोक करो राजा के ऊपर भी अपना मन बुरा न करो।"

राजा अपने चरपुरुषों द्वारा बन्धुलमल्ल को निर्दोषी जान

दुःखित हो, मल्लिका के घर गया और उससे तथा उसकी बधुओं से क्षमा माँगा।

मल्लिका अपने पति के साथ पुत्रों की अन्त्येष्ठि-क्रिया करके अपनी बहुओं को उनके पीहर भेज, स्वयं कुशीनगर चली आई।[1] जब भगवान् का परिनिर्वाण हो गया और एक सप्ताह बाद उनका मृत-शरीर कुशीनगर के बीच से ले जाया जा रहा था, तब मल्लिका अपने पति की मृत्यु के पश्चात् नहीं पहने हुए विशाखा के गहनों[2] की भाँति अपने 'महालता-प्रशाधन' को मँगवाकर, सुगन्धित जल से धो, द्वार पर खड़ी थी। वैसा महालता-प्रशाधन उस समय विशाखा, मल्लिका और देवदानिय चोर—इन तीन ही के यहाँ था।

जब भगवान् का शरीर उसके द्वार के सामने आया, तब उसने भगवान् के शरीर को उतरवाकर उस प्रशाधन (=आभूषण) को भगवान् के शरीर पर ओढ़ा दिया। वह शिर से लेकर पैर तक लम्बा था। सुवर्ण-वर्ण का भगवान् का शरीर, सात रत्नों से जटित महाप्रशाधन से आभूषित होकर अत्यन्त शोभने लगा। उसे देखकर प्रसन्न हो मल्लिका ने प्रार्थना की—"भगवन्! जब तक मैं जीवन्मुक्त न होऊँ, तब तक मुझे गहने की आवश्यकता न हो, मेरा शरीर ही नित्य प्रशाधन (=आभूषण) पहने हुए के समान हो।"[3]

वह वीराङ्गना मल्लिका आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई, मरकर देवलोक में उत्पन्न हुई।[4]

—o—

१—धम्मपदट्ठकथा ४, ३।

२—विशाखा का 'महालता-प्रशाधन' नव करोड़ के मूल्य का था। विस्तार के लिये देखो धम्मपदट्ठकथा ४, ८।

३—दीघ नि० अट्ठ० २, ३। ४—विमानवत्थु ३, ८।

सप्तम प्रकरण

कुशीनगर की धार्मिक और दार्शनिक अवस्था

बुद्ध और जैन धर्म के प्रादुर्भाव के पूर्व कुशीनगर के मल्ल वस्तुतः चैत्यपूजक थे। जिस प्रकार वैशाली में चापाल चैत्य, उदेन (=उदयन) चैत्य, गौतमक चैत्य, सत्तम्ब चैत्य, बहुपुत्र चैत्य और सानन्दद-चैत्य थे,[1] उसी प्रकार कुशीनगर में हिरण्यवती नदी के किनारे मुकुटबन्धन चैत्य और भोगनगर में आनन्द-चैत्य[2] थे। जिनके पास शालायें भी बनी हुई थीं। बलिहरण वन सण्ड, देववन, शालवन, अम्बवन आदि आराम-चैत्य थे, जिन्हें वन-चैत्य कहा जाता था। गाँव-निगमों के द्वारों पर आजकल के 'बरम' और 'डीह' के चौरा के समान पूजनीय वृक्ष होते थे, जहाँ देवस्थान बना रहता था और सब लोग उनको पूजा किया करते थे। उन देवस्थानों को वृक्ष-चैत्य कहा जाता था।[3] परन्तु पूजा करने की क्या विधि थी? इसका कुछ पता नहीं लगता।

बुद्धकाल में अधिकांश मल्ल बौद्ध हो गये थे। कुशीनगर के मल्ल-पुत्र दब्बस्थविर का भिक्षुओं में एक विशिष्ट स्थान था, उन्हें भिक्षु संघ में शयनासन-प्रज्ञापकों (=गृह-प्रबन्धकों) में 'अग्र' (=सर्व-श्रेष्ठ) की उपाधि मिली थी[4] कुशीनगरवासी रोजमल्ल स्रोतापन्न उपासक था। बन्धुलमल्ल, अपनी स्त्री मल्लिका और अपने बत्तिस पुत्रों के साथ बौद्ध हो गया था। पावा के राजकुल

१—दीघनिकाय २, ३, ३। २—'सानन्दर' भी पाठ मिलता है।

३—मज्झिम नि० अट्ठ० १, १, ४। ४—अंगुत्तर नि० १,२,१।

में उत्पन्न हुए गोधिक, सुबाहु, वल्लिय और उत्तिय भिक्षुसंघ में प्रव्रजित होकर अर्हत्व पा लिये थे।[१] तपस्सु नामक मल्ल-पुत्र एक पक्का बौद्ध और दार्शनिक था, जो आनन्द के पास जाकर नैष्कम्य के विषय में प्रश्न पूछा था।[२] यशदत्त स्थविर का जन्म मल्लराज-कुल में हुआ था, वे पढ़ने के लिये तक्षशिला गये थे और वहाँ से सब शिल्पों को सीख कर लौटने के पश्चात् भिक्षु होकर अर्हत् हो गये थे।[३] सिंह स्थविर कुशीनगर के मल्ल-राज-वंश में उत्पन्न हुए थे, जो भगवान् के उपदेश को सुनकर भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गये थे।[४] पावा का चुन्द कम्मार पुत्र भगवान् के प्रथम दर्शन में ही स्रोतापन्न हो गया था और अपना आम्र-वन भिक्षु संघ को दान कर दिया था। उसी ने भगवान् को अन्तिम भोजन भी खिलाया था। खण्डसुमन स्थविर पावा के मल्ल-राजवंश के थे।[५] उरुवेलकप्प का भद्रक ग्रामणी एक तीक्ष्ण-बुद्धि उपासक था, जिसने कि भगवान् के वहाँ पधारने पर दुःख की उत्पत्ति और निरोध (=शान्ति) विषयक प्रश्न पूछा था, जिसका भगवान् ने बड़े सुन्दर ढंग से निराकरण करते हुए उसे उपदेश दिया था।[६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मल्लराष्ट्र बौद्धों से परिपूर्ण था। मल्लों का बुद्ध के प्रति आदर और सम्मान इतना प्रगाढ़ था कि उन्होंने उनकी अगवानी करने के लिये परस्पर प्रतिज्ञा की थी और उसको पूर्ति नहीं करने वाले को दण्ड देने का विधान बनाया था।[७]

१—अंगुत्तर निकाय १,२,१। २—थेरगाथा ६,१-४। ३—अंगुत्तर नि० ९,४,१०। ४—थेरगाथा ५,१०। ५—थेरगाथा १,६,२। ६—थेरगाथट्ठकथा १,१०,६। ७—संयुत्त निकाय ४,४०,१,११।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय तथा पीछे के उनके किये सम्मान से हम पूर्ण परिचित हैं। उन्होंने भगवान् का दाह संस्कार बड़े उत्साह, भक्ति और सावधानी से किया था। धातु का सत्कार और बँटवारा भी बड़ी ही श्रद्धा और प्रेम से किया था।

थोड़े से मल्ल जैनधर्म को भी मानते थे। उनकी संख्या पावा में अधिक थी। हम जानते हैं कि महावीर जैन की मृत्यु के पश्चात् पावा में उनके अनुयायी दो भागों में बँट गये थे और धर्म-विषयक झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। गृहस्थ, श्रमण, उपासक, उपासिकायें सब दो पक्षों में हो गई थीं। आयुष्मान् चुन्द ने यह समाचार पावा से लाकर शाक्य जनपद के सामगाम में विहरते हुए आनन्द को सुनाया था और आनन्द ने चुन्द को साथ लेकर भगवान् के पास जाकर कहा था।[२] सामगाम सुत्त से प्रगट है कि पावा में ही सर्वप्रथम जैनियों के श्वेताम्बर और दिगम्बर निकायों की सृष्टि हुई थी।

कल्पसूत्र से विदित है कि महावीर के मृत्यु-दिवस को मनाने के लिये नव मल्ल सरदारों ने अमावस्या के दिन यह कहते हुए दीपावली मनाई थी—"यद्यपि प्रतिभा का प्रकाश बुझ गया है, तथापि हम लोगों को भौतिक वस्तु का प्रकाश करना चाहिये।"[३]

मल्लराष्ट्र में कुछ लोग आजीवक (=नंगा साधु) सम्प्रदाय के भी थे। भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् मन्दार-पुष्प लिया, कुशीनगर से पावा के मार्ग पर जाता हुआ, एक आजीवक आयुष्मान् महाकाश्यप को मिला था, जिससे उन्होंने एक सप्ताह पूर्व भगवान् के परिनिर्वाण होने की बात जानी थी।[१]

१—महावग्ग। २—मज्झिम नि० ३, १, ४। ३—कल्पसूत्र पृष्ठ ७७।

दार्शनिक-विचारों में मल्लराष्ट्र पर्याप्त उन्नति कर चुका था। बौद्ध, जैन, आजीवक और ब्राह्मण-दर्शनों के साथ पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, प्रकुध कात्यायन, संजय-बेलट्ठिपुत्र आदि तत्कालीन गणाचार्यों के दार्शनिक विचारों से भी यह प्रदेश अछूता न रहा। यद्यपि तित्तिरिय (=तैत्तिरीय), अद्धरिय (=ऐतरेय), छन्दोग (=छान्दोग्य), बव्हारिज्झ (=वृहदारण्य) आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रभाव जाता रहा, फिर भी समय-समय पर कुछ ब्राह्मण-तरुण इनकी चर्चा किया करते थे।[१]

१—दीघ नि० १, १३।

अष्टम प्रकरण

कुशीनगर के मल्ल और उनका राजनीतिक संगठन

मल्लराष्ट्र पर जब हम दृष्टि-पात करते हैं, तब हमारे सामने न जाने कैसे-कैसे भाव अवतरित होते हैं। हम देखते हैं कि मल्लों ने अपने राष्ट्र का विस्तार अपनी संगठित समिति द्वारा किया था, उन्होंने पूरब में लिच्छवियों पर अपना प्रभुत्व जमाया था, लिच्छवि-कौंसिल (=संस्थागार Mote holl) में सर्वदा नव मल्ल रहते थे।[1] वेठ दीप[2] (=विष्णुद्वीप) भी इनके प्रभाव से अछूता न था। उत्तर में पार्वतीय प्रदेश इनके अधिकार में ही थे। पश्चिम में पिप्पलिवन के मौर्य, रामग्राम और देवदह के कोलिय तथा कपिलवस्तु के शाक्य भी पीछे मल्लों के प्रभाव से प्रभावित हो गये थे।

भगवान् बुद्ध के जीवन काल में ही कुशीनगर का वीर बन्धुलमल्ल कोशलनरेश प्रसेनजित के राज्य का प्रधान सेनापति था, जो मल्लों की वीरता, बाहुबल और युद्धविद्या की निपुणता का परिचय लिच्छवियों के साथ संग्राम करके वैशाली में दे चुका था।[3] उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका भांजा दीर्घकारायण प्रसेनजित का सेनापति बना था।[4] जिसने समय पाकर विडूडभ

१—निरयावल्लियाओ पृष्ठ २७।

२—सम्भवतः वर्तमान् बेतिया, जिला चम्पारन।

३—धम्मपदट्ठकथा ४, ३।

४—मज्झिम नि० अट्ठकथा २, ४, ९।

का राजा बनाया और प्रसेनजित से अपने मामा बन्धुलमल्ल के मारने का बदला लिया। दीघकारायण के ही साथ विड़ूडभ ने शाक्यों का संहार किया था। वस्तुतः शाक्य जनपद पूर्व से भी कोशल राज्य के आधीन ही था।[१] अब दीर्घकारायण मल्ल के असिवाही करों से ७७००० शाक्यों के वध[२] के पश्चात् उन पर मल्ल राष्ट्र तथा मल्ल जाति का प्रभाव ही न पड़ा, अपितु वे कोशल नरेश के आधीन होते हुए मल्लों से भी आ मिले। दोनों राष्ट्रों के बीच वाले कोलिय और पिप्पलिवन के मौर्य भी मल्लों के साथ अपना प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लिये। जो कोलिय, शाक्य और पिप्पलिवन के मौर्य भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् बुद्ध-धातु के लिये मल्लों पर चढ़ दौड़े थे, वे इनके आधीन हो गये।

मल्ल राष्ट्र का गणतन्त्र-शासन-प्रबन्ध प्रधानतः दो भागों में बँटा हुआ था। कुशीनगर के अतिरिक्त पावा में भी मल्लों का एक गणतन्त्र सभा-भवन (=संस्थागार) था। इन दोनों गणतन्त्र सभाओं के सदस्य राजा कहलाते थे और वे वारापारी राज्य करते थे।[३] जिस समय जिसको राज्य करने की वारी आती थी, वह स्थायी रूप से नगर में रहता था, शेष व्यक्ति वाणिज्य आदि नाना व्यवसायों में लग जाते थे। जिस समय भगवान् पावा से कुशीनगर आ रहे थे, उस समय मार्ग में उन्हें इसी प्रकार से पाँच सौ बैलगाड़ियों के साथ व्यापार करने

१—जातकट्ठकथा १२, २ "मयं कोसलरञ्ञो आणापवत्तिट्ठाने वसाम।"

२—"हत्वा तत्र सहस्राणि शाक्यानां सप्तसप्तति" विरूढकावदानम्।

३—दीघनिकाय अट्ठकथा २, ३।

के लिए कुशीनगर से पावा जाता हुआ राजकुमार पुक्कुस मल्ल मिला था।

किसी भी कार्य को करने के लिये सभा के सब सदस्य संस्थागार में एकत्र होते थे। उनके सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता था। उनसे छन्द (=वोट) लिया जाता था और उस गण-सन्निपात (=पार्लियामेंट की बैठक) में बहुमत से उक्त प्रस्ताव स्वीकृत किया जाता था। हम देखते हैं कि जिस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सन्निकट परिनिर्वाण का सन्देश लेकर कुशी-नगर के मल्लों के पास गये, उस समय सभी मल्ल किसी कार्य से संस्थागार में इकट्ठे हुए थे। न केवल प्रजातन्त्र मल्लराष्ट्र में यह नियम था, अपितु वैशाली के लिच्छवी, रामग्राम और देवदह के कोलिय तथा कपिलवस्तु के शाक्य भी इसी प्रकार अपने कार्य करते थे।

मल्ल लोग अपने नियमों का पालन यथोचित रूप से करते थे। जिस समय बन्धुल मल्ल अपने माँ बाप के पास जाकर कहा था कि मैं सभी मल्ल-वीरों को मारकर राज्य करूँगा, तब उन्होंने उसे यह कहकर रोका था कि 'यह प्रवेणी (=वंशानुगत) राज्य है, यहाँ ऐसा नहीं कर सकते।'[१] जो बात संस्थागार की बैठक में निश्चित हो जाती थी, उसे सबको मानना पड़ता था, चाहे कोई उसके प्रति अनिच्छुक ही क्यों न हो। हम देखते हैं कि परिनिर्वाण-काल से पूर्व जब भगवान् कुशीनगर आये थे, तब भगवान् के आगमन के समाचार को पाकर मल्लों ने परस्पर प्रतिज्ञा की थी कि जो भगवान् की अगवानी नहीं करेगा, उसे पाँच सौ दण्ड देना पड़ेगा। अतः सब लोगों ने भगवान् की अगवानी की। रोजमल्ल को भी—जो ऐसा नहीं

१—धम्मपदट्ठकथा ४, ३।

करना चाहता था, विवश होकर अगवानी करने में सम्मिलित होना पड़ा था।[1]

मल्ल युद्ध-प्रिय जाति थी और कुश्ती (=मल्ल विद्या) आदि में अधिक प्रवीण थी। सम्भवतः जो मल्ल शब्द पहलवान का पर्याय है, वह इस साहसी जाति के नाम से लिया गया हो, किन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि मल्ल लोग विद्या के प्रति उदासीन थे। हम देखते हैं कि मल्लों के पुत्र तक्षशिला के प्रख्यात विद्यालय में पढ़ने के लिए जाते थे और वहाँ से शिल्प, कला, भाषा, विज्ञान, इतिहास आदि विषयों के महापण्डित होकर लौटते थे। बन्धुलमल्ल की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी, जिसने वहाँ की शिक्षा समाप्तकर कुशीनगर आने पर राज-कुल के बीच अपनी सामर्थ्य दिखलाई थी और प्रत्येक बाँस में लोहे की शलाका (=छड़) डाल, खड़ाकर साठ-साठ बाँसों के साठ कलापों को अस्सी हाथ उछलकर तलवार की एक-एक वार में काट दिया था। जब अन्तिम कलाप के काटने के समय शलाका के खनखनाने का शब्द हुआ, तब तलवार फेंककर रोते हुए कहा—"मेरे इन जाति-सुहृदों में से एक ने भी स्नेहयुक्त हो इस बात को न बतलाया, यदि मैं जानता, तो लोहे की शलाका के शब्द हुए बिना ही काटता।"[2]

मल्ल वीरांगनायें भी धैर्य और साहस में पुरुषों से कम न थीं, जिस समय मल्लिका देवी ने अपने बत्तिस पुत्रों के साथ पति के मरने का समाचार पाया उस समय उसने आँसू तक न बहाये और अपनी बधुओं को धैर्य धारण करने की शिक्षा दी। जैसा वज्जियों का अपना पुरातन नियम था, वैसा ही

१—महावग्ग ६, ३३। २—धम्मपदट्ठकथा ४, ३।

मल्लों में भी विद्यमान था, जब मल्ल और लिच्छवि सम्मिलित शासन कार्य करते थे, तो यह असम्भव नहीं कि मल्ल और वज्जी प्रजातन्त्र की शासनप्रणाली तथा राजनीतिक संगठन एक-सा हो। हम देखते हैं कि किसी भी अपराधी के पकड़े जाने पर 'पुरिस' (=सिपाही) उसे अपराधी न कहकर विनिश्चय महामात्य (=न्यायाधीश) के पास ले जाते थे। यदि वहाँ वह व्यक्ति अपराधी नहीं ठहरता था, तो छोड़ दिया जाता था, और यदि अपराधी होता, तो वोहारिक (=व्यवहारिक) के पास ले जाया जाता था। वहाँ भी वैसा ही होता था। इसी प्रकार क्रमशः अन्तोकारिक, अट्ठकुलिक (=अष्टकुलिक), सेनापति, उपराजा और राजा के पास ले जाते थे। अन्त में राजा उसे अपराधी प्रमाणित होने पर प्रवेणी-पुस्तक (=कानून का ग्रन्थ) बँचवाता था और उसके अनुसार दण्ड दिया जाता था।[1]

मल्लराष्ट्र के तत्कालीन निगम (=कस्बा) और ग्राम अनूपिया, थूणग्राम, उरुवेलकप्प, आम्रग्राम, जम्बूग्राम, भोगनगर आदि कुशीनगर और पावा से सम्बन्धित थे। इन निगमों तथा ग्रामों की शासन-व्यवस्था उक्त संस्थागारों के विधान के अनुसार ही थी। ये सब संयुक्त प्रजातन्त्र राज्य के सदस्य और अधिकारी थे।

मल्लों के संगठित प्रजातन्त्र राज्य की व्यवस्था पर भगवान् बुद्ध बहुत प्रसन्न थे और अपने जीवन काल में अनेक बार कुशीनगर, अनूपिया आदि में पधारे थे।

१—दीघनि० अट्ठ० २, ३।

नवम प्रकरण

कुशीनगर के मल्लों की वेषभूषा

कुशीनगर के मल्ल वीर और पराक्रमी थे। कलाकौशल, वास्तु-विद्या, धनुर्वेद, कर्मान्त, शिल्प और उद्योग-धन्धे में भी पर्याप्त उन्नति कर चुके थे। प्रजातन्त्र मल्लराष्ट्र के मल्ल अपनी विशिष्ट विशेषताओं के ही कारण अपने संगठित राज्य का संचालन सुचारु रूप से करते थे। जिस प्रकार शाक्य जनपद में 'खोमदुस्स' नामक निगम के क्षौम (=अलसी के रेशों से बने हुए)-वस्त्र मध्य मण्डल में प्रसिद्ध हो चुके थे,[1] उसी प्रकार मल्लों के कपास और रेशों के बने वस्त्रों की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। अत कुशीनगर के मल्ल उन महीन रेशमी, मलमल और कपास के वस्त्रों को पहनते थे। उनके पहनने के वस्त्र तीन प्रकार के होते थे, नीचे अन्तर्वासक होता था, ऊपर उपरना (=संघाटी) और सिर पर शिरोवस्त्र (=पगड़ी)।

जब भगवान् पावा से कुशीनगर आ रहे थे, तब उन्हें मार्ग में पुक्कुस मल्ल मिला था, जो भगवान् को अपनी धारणी (=संघाटी) दान कर दिया था[2] वह धारणी रेशमी, इंगुर के वर्ण की थी। उसकी मृदुता और कोमलता दर्शनीय थी। उस धारणी का उत्पादन कुशीनगर की ही कर्मान्त-शाला में हुआ था। सब मल्ल राजा वैसी धारणी रखते थे, जिसे विशेष समय

१—संयुत्त निकाय अट्ठ० १,७,२,१२। २-दीघ नि० २, ३।

पर ओढ़ते थे[१] जब वे व्यापार आदि के कार्य से नगर से बाहर जाते थे, तब रत्न जटित रथों पर बैठ कर नाना वर्ण के वस्त्राभरण से अलंकृत होकर जाते थे।[२]

यह विदित है कि मल्लों का प्रगाढ़ सम्बन्ध लिच्छवियों से था। नव मल्ल राजा भी लिच्छवी प्रजातन्त्र के शासक थे। अतः असम्भव नहीं कि लिच्छवियों की वेषभूषा का प्रभाव मल्लों पर न पड़ा हो। हम देखते हैं कि जिस समय भगवान् वैशाली में अम्बपाली गणिका के आम्रवन में विहार कर रहे थे, उस समय लिच्छवी सुंदर-सुंदर रथों पर सवार होकर भगवान् को निमन्त्रित करने आये थे। उनमें कोई कोई लिच्छवी नीले आलेपन लगा कर नीले बने थे, नीले वस्त्र और अलंकार से भी युक्त थे। रथ, घोड़े और ध्वजा आदि भी नीले ही थे। ऐसे ही कोई-कोई लिच्छवी पीले, लाल, श्वेत रंग के वस्त्राभरण से सजे थे। उन्हें दूर से ही आते हुए देख कर भगवान् ने भिक्षुओं को कहा था—"भिक्षुओ, लिच्छवियों की परिषद् को देखो। जिन्होंने त्रायस्त्रिंश-भवन के देवताओं को नहीं देखा है, वे लिच्छवियों को देखें। यह लिच्छवि-परिषद् त्रायस्त्रिंश-देव-परिषद् जैसी है।"

वस्तुतः मल्लों की वेषभूषा लिच्छवियों से किसी भी प्रकार हीन न थी।

मल्ल धनुष, बर्छी, भाला और गदा से सुसज्जित रहा करते थे। शाक्यों के सामगाम निगम (=कस्बा) के वेधञ्ञा (=वैधन्वा) की धनुर्वेद-शिक्षण-शाला की भाँति कुशीनगर में

१—दीघ नि० अट्ठ० १,३। २—'सब्बरतन याने निसीदित्वा—अट्ठकथा।

भी धनुर्वेद विद्यालय थे। जिनमें बन्धुल मल्ल आदि ने शिक्षा पाई थीं। प्रत्येक मल्ल गदाधारी होता था। गदायें रत्न आदि से जटित होती थीं। जिस समय भगवान् के सन्निकट परि-निर्वाण का समाचार कुशीनगर में पहुँचा, उस समय मल्ल अपनी हीरक-गदाओं को फेंक-फेंक कर भगवान् के पास गये थे और लोट-पोट कर रोये थे। मल्ल-बधुयें और कन्यायें इतनी रोयी थीं कि उनके आँसुओं से भगवान् का पैर तर हो गया था।[२] वज्रपाणि मल्ल जो अपनी हीरक-गदा के साथ शालवन गया था, बेसुध होकर उसे फेंक दिया था![३]

स्त्रियाँ भी अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों को धारण करती थीं। उनकी केशें लम्बी और अष्टपद (=घुँघराली) होती थीं। विशेष कर मल्ल राजाओं की स्त्रियाँ मणि युक्त कुण्डल पहनती थीं। उनके पैरों में महावर और मुँहपर पाउडर (=चूर्णक) लगा रहता था। आँखें अंजन से रञ्जित होती थीं। मल्लिका के वस्त्राभरण से स्पष्ट है कि मल्ल बधुयें किस प्रकार आभरण प्रिय थीं। उन्हें माँ-बाप ससुराल जाते समय बहुत धन व्यय करके आभूषण बनवा कर पहनाते थे। मल्लिका के माँ-बाप ने उसे नव करोड़ का 'महालता-प्रशाधन' दिया था!

१—दीघ नि० अट्ठ, ३,६। २—चुल्लवग्ग ११।
३—देखो, 'हुएसांग का भारत भ्रमण' पृष्ठ ३०९।

दशम प्रकरण

कुशीनगर की मल्ल जाति और उसका प्रसार

कुशीनगर के मल्ल वाशिष्ठ वंशी क्षत्रिय थे। उनके गोत्र के लिए पालि ग्रन्थों में सर्वत्र "वासिट्ठ" शब्द का प्रयोग हुआ है। न केवल कुशीनगर के ही, अपितु पावा, अनूपिया आदि के मल्ल भी वाशिष्ठ वंशी क्षत्रिय थे। जिस समय भगवान् के परि-निर्वाण की बात चारों ओर फैली, उस समय पावा के मल्लों ने कुशीनगर के मल्लों के पास सन्देश भेजा—"भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं, हमें भी धातु मिलनी चाहिये।"[1]

अट्ठकथाओं में आया है कि मल्ल नाम का एक जानपद राजकुमार था, जिसके रहने का जनपद भी रूढ़ि शब्द से मल्ल कहा जाने लगा।[2] मल्ल-जानपद-राजकुमार इक्ष्वाकु परम्परा का था। महापरिनिर्वाण सूत्र से विदित है कि मल्ल, कोलिय, मौर्य, लिच्छवी, शाक्य, बुली आदि सब क्षत्रिय थे और सब अपने को इक्ष्वाकु परम्परा का मानते थे। वस्तुतः कुशीनगर, अनूपिया और पावा के मल्ल, देवदह, रामग्राम आदि के कोलिय, पिप्प-लिवन के मौर्य, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य,

---

१—अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—"भगवापि खत्तियो, मयम्पिखत्तिया" आदि।

२—मज्झिम नि० अट्ठ० ३,१,३, दीघ नि० अट्ठ० ३,१ उदान अ० २,१० आदि।

अल्लकप्प के बुली, मिथिला के विदेह,[1] कुण्ड ग्राम के ज्ञात्रि,[2] और केसपुत्त के कालाम[3] एक ही ओक्काक (=इक्ष्वाकु) वंश के थे।

मल्ल जाति सम्पूर्ण मल्लराष्ट्र में ही नहीं, प्रत्युत उसके समीपवर्ती चतुर्दिक प्रदेश में फैली हुई थी। भगवान् के परि-निर्वाण के पश्चात् कुछ दिनों तक उस जातिका क्रमिक प्रसार होता ही रहा, किन्तु जब बुद्ध-निर्वाण के तीसरे वर्ष लालची अजातशत्रु द्वारा लिच्छवियों की स्वतन्त्रता हड़प ली गई थी, ठीक उसके बाद ही मल्ल जाति की भी स्वतन्त्रता हर ली गई थी। जो मल्लराष्ट्र भारत के इतिहास में एक प्रमुख धार्मिक और राजनैतिक स्थान रखता था तथा तत्कालीन एक शक्ति-शाली राज्य होता जा रहा था, वह मगध-राज्य में मिला लिया गया। फिर भी मल्ल जाति अपने शौर्य और स्वभाव को पूर्ववत अक्षुण्ण रखी।

पीछे पुष्यमित्र के समय में इस जाति को बड़ा गहरा धक्का लगा और हर्ष के समय तक आते-आते अनेक अत्याचारों को सहना पड़ा। सम्भवतः गुप्त काल में ही इन्हें सताया गया था। वस्तुतः उन्हीं दिनों मनुसंहिता आदि ग्रन्थों की रचनायें हुईं, जिनमें सारे बौद्ध

१—लिच्छवी और विदेहों के राष्ट्र का नाम वज्जी था। वज्जी कोई अलग जाति नहीं थी। महापरिनिब्बान सुत्त की टीका में लिखा है—"रट्ठस्स पन वज्जी समञ्ञा।" अर्थात् वज्जी राष्ट्र का नाम था।

२—वर्तमान् जथरिया जाति।

३—वस्तुतः कलवार शब्द कालाम का ही रूपान्तर है। कलचुरी शब्द से कलवार की उत्पति न होकर कालाम से ही हुई है।

धर्मावलम्बियों को फटकारा गया।[१] उन्हें अपनी स्मृतियों में शूद्रों की गणना में रखा गया। यही नहीं, अंग, वंग, कलिङ्ग, सुराष्ट्र, मगध आदि बौद्ध-प्रधान देशों में यात्रा करने के अतिरिक्त जाने पर पुनः संस्कार करने का विधान बनाया गया।[२]

मल्ल बौद्ध होने के कारण जाति-वाद की संकीर्णता को न मान कर पीछे ब्राह्मणों की कन्याओं को भी लेना प्रारम्भ कर दिये थे। उस समय जातिवाद यों ही ढ़ीला पड़ गया था। पीछे जब गुप्तों के काल के बाद कन्नौज के प्रभुत्व के समय में जातियोंका अलग-अलग गुट बनना प्रारम्भ हुआ, तब कितने मल्ल (जिनका कि ब्राह्मणों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध पूर्व से था) ब्राह्मणों में चले गये और कितने ही क्षत्रियों में।

वर्तमान सैंथवार[३], भूमिहार[४], बिसेन, चनऊ, पयासी के

१—"झल्लो मल्लश्च राजन्या व्रात्यालिच्छवि रेव च।
नटश्च करणचैव खसो द्रविण एव च ॥"

—देखो, मनुसंहिता तथा जैमिनी ब्राह्मण, १, २३४ अं० सं० ५, २१, ४-५।

२—"अंग वंग कलिंगेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विनागत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥"

—स्मृतिनां समुच्चयः पृष्ठ ८५।

३—"सैंथवार जाति क्षत्रिय नहीं वरश्च इतिहास सिद्ध कुर्मी है" (लेखक, बाबू यज्ञेश्वर नारायण सिंह प्रकाशक—क्षत्रिय रिसर्च सोसाइटी, इलगिन रोड, दिल्ली) में जो सैंथवार जाति को कुर्मी बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है, वह केवल प्रतिस्पर्द्धा के कारण। और "सैंथवार जाति का इतिहास" में भी बे-सिर-पैर की बातें की गई हैं।

४—वस्तुतः भूमिहार शब्द जातिभूमिक का ही रूपान्तर है। जाति-भूमिक कपिलवस्तु वासी शाक्यों का नाम था। (देखो, मज्झिम नि०

मिश्र और मलाँवपाँड़े जातियाँ भूत में मल्ल जाति के अन्तर्गत थीं।

प्राचीन मल्लराष्ट्र के भू-भाग में अब भी मल्लों के राज्य वर्तमान् हैं, परन्तु उन राज्यों के मल्ल-शासक अपने को मल्ल-वंशज न जान कर ब्राह्मणधर्मी क्षत्रिय समझते हैं। महा-पण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायनजी का कहना है कि पड़रौना के राजा साहब (जो आजकल सैंथवार कहे जाते हैं), ढ़थुवा तथा तमकुही के बगौछिया (जो आजकल भूमिहार ब्राह्मण कहे जाते हैं) एवं मझौली के राजा साहब (जो आजकल बिसेन राजपूत कहे जाते हैं)—एक ही मल्ल क्षत्रियों के वंशधर हैं।[१]

१,३,४ और अंगुत्तर नि० ६,५, ५४) किन्तु कुछ विद्वानों ने 'म० क्षत्रिय' का रूपान्तर बतलाया है और कहा है कि वे मल्ल थे।

१—देखो, पुरातत्व निबन्धावली पृष्ठ १११।

एकादश प्रकरण

कुशीनगर का परिवर्तन और नाश

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण (ई० पूर्व ५४३) के पश्चात् ही मल्लों ने कुशीनगर के शालवन उपवत्तन में भिक्षुओं के लिये अनेक नये विहार बनवाये थे। भगवान् की धातु पर एक विशालस्तूप का भी निर्माण किया था। बुद्ध-धातु-विभाजन के पश्चात् पूर्ण-स्थविर सात सौ भिक्षुओं के साथ कुशीनगर में ही रह गये थे। वे सब भिक्षु इन्हीं विहारों में रहते थे।

उस समय की अनिर्वचनीय भव्यता क्या ही धर्म-संलग्न प्रवृत्ति की उत्पादक थी कि जिस समय इस शालवन उपवत्तन के विहारों में सहस्त्रों भिक्षु विहार करते थे। श्रद्धालु उपासक उपासिकायें यहाँ सायं-प्रातः धर्म श्रवण करती थीं। धर्म की प्रभुता की आवाहनकारिणी शक्ति किसको नहीं मिथ्या-दृष्टि वाले धर्मों से बचा लेने वाली थी ? काल भी तो भूत-भविष्य के साथ इसी की सूचना दे रहा था; किन्तु संसारकी परिवर्तन-शीलता और अनित्यता ने मल्लराष्ट्र की काया-पलट कर दी। जैसा कि बतलाया जा चुका है—बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ ही दिन बाद मल्लों की स्वतन्त्रता अजातशत्रु द्वारा हर ली गई और मल्लराष्ट्र पर मगधनरेश का एकाधिपत्य हो गया। अब प्रजातन्त्र के स्थान पर वह राजतन्त्र का साम्राज्य बन गया।

१. अजातशत्रु के कृत्य

अजातशत्रु पहले भगवान् बुद्ध का बड़ा विरोधी था, वह देवदत्त की बातों में आकर उन्हें मरवाने का भी प्रयत्न किया

था; किन्तु पीछे वह एक सच्चा उपासक बन गया था। कुशीनगर से बुद्ध-धातु को राजगृह ले जाते समय उसने कुशीनगर से राजगृह तक ५६० गज चौड़ा मार्ग बनवाया था। जिस समय वह कुशीनगर पर अपना अधिकार किया होगा, उस समय यहाँ अवश्य विहारों को बनवाया और भिक्षुओं को आश्रय दिया होगा।

२. अशोक द्वारा स्तम्भ, स्तूप तथा विहारों का निर्माण

शैशुनाक वंश के विनाश के पश्चात् कुशीनगर पर महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य आदि अनेक राजाओं ने शासन किया किन्तु इसका विशेष इतिहास अशोक के समय का ही मिलता है।

महाराज अशोक अपने आचार्य और बहुत से स्थविरों के साथ कुशीनगर आये थे। कहते हैं जब उन्होंने यह सुना कि इसी स्थान पर भगवान् का परिनिर्वाण हुआ था, और वे परम कारुणिक महर्षि यहीं पर उपादिशेष निर्वाण धातु को प्राप्त हुए थे, तब वे बेहोश हो गये थे। उन्होंने एक लाख मुद्रा देकर चैत्य बनवाया था तथा भिक्षुओं के पैरों पर गिर कर कहा था—"आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया।" तत्पश्चात् अग्रश्रावक सारिपुत्र की धातु को पूजने के लिये जेतवन को प्रस्थान किया था।[१]

१—'दिव्यावदान' पृष्ठ ३९४। (प्रकाशित, कैम्ब्रिज, युनिवर्सीटी प्रेस, १८८६।):—

"लोकं सदेवमनुजासुरयक्षनागं, अभ्युय्य धर्मविनयेमतिमां विनीय।
वैनेय सत्त्व विरहानुपशान्त बुद्धिः, शान्तिगतः परमकारुणिको महर्षिः॥
श्रुत्वा च राजा मूर्छितः पतितः।......परिनिर्वाणे शतसहस्रं दत्वा चैत्यं प्रतिष्ठाप्य......।"

अट्ठकथा और शिलालेखों के अनुसार जान पड़ता है कि अशोक ने कलिंग विजय के पश्चात् खिन्न होकर यह धारणा कर ली—"धर्म-विजय ही सर्वश्रेष्ठ विजय है, अतएव अब धर्म-विजय ही करना उचित है।" तदुपरान्त उन्होंने चौरासी हजार विहारों को निर्मित कराया और सब बौद्ध तीर्थों की यात्रा की। रामग्राम के स्तूप को छोड़ कर बाकी सब धातु स्तूपों को तोड़वा कर परीक्षा करायी। उस समय कुशीनगर का भी धातु-स्तूप तोड़वाया गया और वह पुनः पूर्ववत निर्मित कराया गया।[१]

हुएनसांग द्वारा लिखे वर्णन से यह पता चलता है कि अशोक ने कुशीनगर में तीन स्तूपों और दो स्तम्भों को बनवाया था। खोदाई से प्राप्त लेखों और इमारतों से स्पष्ट है कि अशोक के समय में यहाँ पर बहुत से विहार और स्तूप बने थे। डा० वोगेल ने लिखा है—"हमारा पूर्ण विश्वास है कि कुशीनगर में कोई भी ऐसी इमारत नहीं है, जो मौर्य काल के बाद की हो।"[२]

वस्तुतः महाराज अशोक के समय में कुशीनगर की पर्याप्त समृद्धि हुई थी।

३. शुङ्ग-काल

जिस समय मौर्यराजा बृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने तलवार के घाट उतार दिया था और मौर्यवंश का उच्छेद कर दिया था, उस समय (ई० पूर्व १८८) कुशीनगर पुष्यमित्र के अधिकार में चला गया था। शाकल (=वर्तमान् स्यालकोट) का राजा मिलिन्द (Menander) बौद्ध होते हुए कुछ नहीं

१—दीघ नि० अट्ठ० २,३।
२—A. S. R. for 1905 P. 38.

कर सका। सम्भवतः हिन्दू राजा पुष्यमित्र द्वारा कुशीनगर के कुछ भिक्षु मारे भी गये थे।[१]

४. क्षत्रप-काल

शुङ्गवंशी राजाओं के पश्चात् उत्तर भारत पर कण्ववंशी राजाओं का अधिकार था, किन्तु उनके सम्बन्ध में कुशीनगर से कोई भी ऐसी वस्तु नहीं प्राप्त हुई है, जिससे उनके राज्यकाल में कुशीनगर की अवस्था पर प्रकाश पड़े। कण्व राजवंश के अवसान के पश्चात् सम्भवतः कुशीनगर पर क्षत्रप राजाओं का अधिकार हो गया था। वे बौद्ध थे और अपने समय में उन्होंने कुशीनगर में कतिपय विहारों को बनवाया था। कुशीनगर की इमारतों की खोदाई से दामसेन क्षत्रप (ई० सन् २२३-२३६) का एक चाँदी का सिक्का मिला है।[२]

५. देवपुत्र कनिष्क के कृत्य

शकों के पश्चात् कुशीनगर पर कुशानों का अधिकार हुआ था। कुशानकाल में कुशीनगर की अवस्था में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। कनिष्क (ई० सन् ७८—१००) के पूर्व भी कुशान वंशी राजाओं द्वारा कुशीनगर में कुछ विहारों का निर्माण हुआ था। खोदाई से कनिष्क के पूर्व अधिकारी कादफीसस (Kadfises) के चार ताँबे के सिक्के मिले हैं। कनिष्क द्वारा बनवाये गये कुछ विहार और आठ सिक्के पाये गये हैं।[३] कनिष्क के समय का एक अपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुआ है।[४]

१—देखो, दिव्यावदान पृष्ठ ४३४ (कैंब्रिज १८८६)।

2—A. S. R. for 1910-11. 3—A. S. R. 190?,

4—A. S. R. for 1906-7, P. 19.

देवपुत्र कनिष्क ने अशोक की भाँति बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए बहुत उद्योग किया। उसके ही समय में 'महायान' की सर्वप्रथम संगीति हुई। उस संगीति की समूची कृति ताँबे के पत्रों पर संस्कृत में अंकित की गई, और उन ताम्रपत्रों की पुस्तक को एक स्तूप के अन्दर—जो उसी के लिये बनवाया गया था, स्थापित किया गया। देवपुत्र कनिष्क के पश्चात् वासिक, हुविष्क और वासुदेव इत्यादि कुशानवंशी राजाओं के समय का कोई चिह्न अबतक कुशीनगर में नहीं मिला है, किन्तु ये बौद्ध थे, इन्होंने भी कुशीनगर में अवश्य कुछ धर्म सम्बन्धी कार्य किया होगा।

६. गुप्त-काल

कुशान वंश के अधःपतन के पश्चात् उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य का अभ्युदय हुआ। उस समय कुशीनगर का पुनः सितारा चमका। चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) से लेकर कुमारगुप्त प्रथम तक यहाँ बहुत से विहार, चैत्य, मन्दिर बनवाये गये। जीर्ण विहारों की मरम्मत की गई और भिक्षुओं को नाना प्रकार से सुख पहुँचाया गया। कुशीनगर की खोदाई से चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० सन् ३८०-४१२) का एक सोने का सिक्का मिला है।[१] कुमारगुप्त प्रथम (ई० सन् ४१३-४५५) के छः चाँदी के सिक्के कुशीनगर के परिनिर्वाण-स्तूप से मिले हैं। भगवान् की एक बहुत सुन्दर मृण्मयी मूर्ति हाथियों के बने प्राकार के बीच रखी हुई मिली है, कुमारगुप्त के समय में ही हरिबल नाम के एक सेठ ने कुशीनगर के परिनिर्वाण मन्दिर में भगवान् की विशाल मूर्ति की स्थापना की थी। उसने परिनिर्वाण

१—A. S. R. fcr 1906-7, P. 20.

स्तूप का पुनः संस्कार करके उसे दृढ़ और ऊँचा बनवाया था। दोनों स्थानों से गुप्तकालीन लेख प्राप्त हुए हैं, जो कुमारगुप्त के समय के हैं भगवान् की परिनिर्वाण-मूर्ति और अन्यान्य प्राप्त चीजों को देखने से जान पड़ता है कि उस समय कुशीनगर में स्थविरवाद के सर्वास्तिवादी भिक्षुओं का प्राधान्य था।

चीनी भिक्षु फाहियान का वर्णन

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भिक्षु फाहियान भारत आये थे और सम्भवतः वे चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में कुशीनगर पहुँचे थे। उस समय तक परिनिर्वाण मन्दिर की बुद्ध-मूर्ति नहीं बनी थी। कुशीनगर उजाड़-सा पड़ा था। उन्होंने लिखा है—"अंगार स्तूप से बारह योजन पूरब चलकर हम कुशीनगर पहुँचे। नगर के उत्तर शाल (=साखू) के दो वृक्षों के बीच निरञ्जना नदी के किनारे भगवान् का उत्तर सिर करके परिनिर्वाण प्राप्त करने का स्थान है। सुभद्र परिव्राजक के पीछे अर्हत् होने का स्थान है। सात दिन तक भगवान् की पूजा करने का स्थान है। वज्रपाणि के सुवर्ण-गदा फेंकने का स्थान है। आठ राजाओं के धातु का अंश लेने का स्थान है। सब जगह स्तूप बने हैं। सङ्घाराम हैं। अबतक हैं। नगर में बस्ती कम और विरल है केवल कुछ तितर-बितर श्रमणों के घर हैं।"

कुशीनगर के मल्लों का प्रजातन्त्र राज्य तो पहले ही नष्ट हो चुका था, केवल विभिन्न टुकड़ों में नहीं बँटा था, किन्तु गुप्त वंश के दिग्विजयी राजा समुद्रगुप्त ने इस पर अपना अधिकार करते ही अनेक भुक्तियों में बाँट दिया। सोहगौरा[1] से पाये गये ताम्रपत्र के अनुसार मल्लराष्ट्र का पश्चिमी भाग

१—यह स्थान गोरखपुर से १८ मील दक्षिण है।

(=वर्तमान् जिला गोरखपुर) श्रावस्ती महाभुक्ति में पड़ता था। समुद्रगुप्त ने भी कुशीनगर में कुछ किया था—इसे जानने के लिये हमें कोई भी साधन उपलब्ध नहीं है। स्कन्दगुप्त (ई० सन् ४५५-४६७) का स्तम्भ लेख अब भी कहाँव[1] में वर्तमान् है। जिससे जान पड़ता है कि पाँचवीं शताब्दी के मध्य में कुशीनगर पर स्कन्दगुप्त का अधिकार रहा; किन्तु उसका एक भी चिन्ह कुशीनगर से नहीं मिला है।[2] पुरातत्त्व-अन्वेषण से यह प्रमाणित हुआ कि कुशीनगर पर गुप्त-राजाओं का चौथी शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अधिकार रहा।

७. हर्षवर्द्धन काल

छठीं शताब्दी के पूर्व भाग में 'हूण' के आक्रमण से गुप्त साम्राज्य सहसा विध्वस्त हो गया और उसके पूर्ण रूप से अधः पतन के पश्चात् सातवीं शताब्दी के प्रथम भाग में थानेश्वर के राजा हर्षवर्द्धन का सारे उत्तर भारत पर अधिकार हो गया। हर्षवर्द्धन एक सच्चा बौद्ध उपासक और धार्मिक राजा था। हम समझते हैं कि हर्षवर्द्धन को नाम की आकांक्षा का दमन कर अपना गौरव छिपाना ही भला प्रतीत होता था। इसीलिये उसका कोई भी लेख या चिन्ह कुशीनगर से नहीं मिला है। वस्तुतः उसका ध्यान कुशीनगर की ओर था भी नहीं, क्योंकि

१—यह तहसील सलेमपुर (जिला-देवरिया) सतराँव स्टेशन से ४½ मील दक्षिण-पूरब अवस्थित है। यहाँ पर एक २४½ फीट ऊँचा स्तम्भ है, जिसपर बारह पंक्ति का ४६० ई० का एक स्कन्दगुप्त का लेख है, जिसमें जैन तीर्थंकर की प्रतिमा-स्थापित करने का वर्णन है। देखिये-फ्लीटः गुप्तइंस्क्रिप्सन्स सं० १५।

२—A. S. R. for 1910—11

· हु हुएनसांग ने उस समय कुशीनगर को प्रायः खँडहर होते पाया था।

हुएनसांग के भ्रमण-वृत्तान्त से विदित है कि उस समय अयोध्या के राजा बालादित्य पर मिहिरकुल—जो बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी था—कई बार चढ़ाई कर चुका था। उधर राजा शशाङ्क ने बुद्धगया के बोधि वृक्ष को खोदवा कर जलवा दिया। पाटलिपुत्र के बुद्ध पद चिन्होंवाली शिला को तोड़वा डाला और बौद्ध विहारों को उजाड़ कर, भिक्षुओं को नाना प्रकार का कष्ट दिया।

उसी समय हर्षवर्द्धन की मृत्यु हो गई। उसका बुलाया हुआ एक चीनी बौद्ध मण्डल ई० सन् ६४७ में भारत आ पहुँचा, जिसका अध्यक्ष 'वेगहिउगन्त्से' था। पहले तो हर्षवर्द्धन के मंत्री ने उन्हें लुटवा लिया था, परन्तु अन्त में उसे हार कर उनका बन्दी होना पड़ा। लगभग पचास वर्ष तक उनका भी अधिकार मल्लराष्ट्र के पूर्वी भाग तथा मिथिला प्रान्त पर रहा।[१]

यशस्वी राजा हर्षवर्द्धन ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाना चाहा था परन्तु वह विवश था। उसके राज्य की जड़ ही कमज़ोर थी। उस बौद्ध-हिंदू-राजनैतिक-संघर्षण काल ने कुशीनगर को मल्लों के हाथ से सर्वदा के लिये छुड़ा दिया। उस समय कतिपय मल्ल नेपाल आदि पार्वतीय प्रदेशों की ओर भी चले गये। अन्य सभी ब्राह्मण और क्षत्रियों में जा मिले—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है।

हुएनसांग का वर्णन

हर्षवर्द्धन के राज्यकाल में चीनी भिक्षु हुएनसांग भारत आये। वे भ्रमण करते हुए लगभग ई० सन् ६४३ में कुशीनगर

१—भारत के प्राचीन राजवंश, भाग २, पृष्ठ ३४१।

पहुँचे थे। उन्होंने लिखा है—"अंगार स्तूप से उत्तर-पूर्व की ओर हम एक विकट जंगल में गये, जिसके मार्ग बड़े बीहड़ और भयानक थे। जंगली बैल, हाथियों के झुंड, शिकारी तथा डाकू लोगों के कारण यात्रियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। इस जंगल को पार करके हम 'किउशीनाकियीलो' (कुशीनगर) राज्य में पहुँचे। इस राज्य की राजधानी बिल्कुल ध्वस्त हो गई है। इसके नगर और गाँव प्रायः जनशून्य और उजाड़ हैं। प्राचीन ईंटों की दीवारें, जिनकी केवल नींव बाकी रह गयी हैं, राजधानी के चारों ओर लगभग १० ली (१½ मील से कुछ अधिक) का घेरा है। नगर में निवासी बहुत थोड़े हैं। महल्ले उजाड़ और खण्डहर हो गये हैं। नगर के द्वार के पूर्वोत्तरवाले कोने में एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यहाँ पर पहले चुन्द का घर था, जिसके मध्य में एक कुआ है। यह भगवान् की पूजा करने के लिये तुरन्त खोदा गया था। यद्यपि यह वर्षों तक उमड़ उमड़ कर बहता रहा है, फिर भी जल मीठा और शुद्ध है।

मैं नगर के उत्तर-पश्चिम ३ या ४ ली[१] दूर अजित (हिरण्यवती) नदी के उस पार, अर्थात् पश्चिमी तट पर शाल-वाटिका में पहुँचा। शाल (=साखू)-वृक्ष हमारे यहाँ के 'हू हू' वृक्ष के समान कुछ हरापन लिये हुए सफेद छाल का होता है। इसकी पत्तियाँ चमकीली और चिकनी होती। हैं। इस बाग में चार वृक्ष बहुत ऊँचे हैं, जो भगवान् के निर्वाण-स्थान को सूचित करते हैं। यहाँ पर ईंटों से बना हुआ एक विहार है। इसके भीतर एक मूर्ति, भगवान् के परिनिर्वाण की बनी हुई है। सोते हुए पुरुष के समान

१— ६ या ६½ ली का १ मील होता है। प्रायः १३ ली का १ कोस।

उत्तर दिशा में शिर करके भगवान् लेटे हैं। विहार के पास एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि यह खण्डहर हो रहा है तो भी २०० फीट ऊँचा है। इसके आगे एक स्तम्भ खड़ा है, जिसपर तथागत के निर्वाण का इतिहास है। वृत्तान्त तो पूरा लिख दिया गया है, परन्तु तिथि मास और सम्वत आदि नहीं है।

विहार की बगल में थोड़ी दूर पर एक स्तूप उस जगह है, जहाँ कि भगवान् अपने किसी पूर्व जन्म में—जब वह धर्म का अभ्यास कर रहे थे—तीतर पक्षी का शरीर धारण किये थे, एवं उस जाति के पक्षियों के राजा हुए थे। उस समय उन्होंने वन में लगी हुई आग को शान्त किया था।

इस स्तूप की बगल में थोड़ी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना है, जहाँ बोधिसत्व[१] ने एक मृग का शरीर धारण करके कुछ जीवों को बचा लिया था।

उक्त स्थान के पश्चिम थोड़ी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना है, जहाँ सुभद्र का शरीरपात हुआ था[२]। सुभद्र के परिनिर्वाण स्तूप की बगल में एक स्तूप उस स्थल पर है, जहाँ पर वज्रपाणि बेहोश होकर गिर पड़ा था। इस स्तूप की बगल में एक और स्तूप उस स्थान पर है, जहाँ बुद्ध निर्वाण के पश्चात् सात दिन तक मल्ल लोग धार्मिक कृत्य करते रहे।

१—बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व बुद्ध बोधिसत्व कहलाते हैं।

२—महायान ग्रन्थों में यह भी लिखा पाया जाता है—"सुभद्र परिव्राजक प्रव्रजित हो, अर्हत्व प्राप्त कर भगवान् के परिनिर्वाण के पूर्व ही भिक्षुओं के बीच बैठे हुए, अग्नि धातु की समाधि लगाकर अनेक चमत्कारों को दिखलाते परिनिर्वृत्त हो गये।"

जिस स्थान पर भगवान् की रथी रोकी गई थी, उसके पास एक स्तूप है। यह वह स्थान है, जहाँ महामाया देवी (= सिद्धार्थ-कुमार की माँ) ने बुद्ध के लिये शोक प्रगट किया था।[1]

नगर के उत्तर नदी पार ३०० पग चलकर एक स्तूप मिलता है। यह वह स्थान है, जहाँ पर तथागत के शरीर का अग्नि-संस्कार किया गया था। कोयला और भस्म के संयोग से इस स्थान की भूमि अब भी श्यामता युक्त पीली है। जो लोग सच्चे विश्वास से यहाँ पर खोज करते हुए प्रार्थना करते हैं, वे भगवान् का कुछ न कुछ अवशेष अवश्य पा जाते हैं।

जिस स्थान पर महाकाश्यप ने भगवान् की पाद-वन्दना की, उसके पास एक और स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। जहाँ पर आठ राजाओं ने भगवान् की धातु को आपस में बाँटा था, वहाँ भी एक स्तूप है। सामने एक स्तम्भ लगा है, जिसपर घटना का वृत्तान्त लिखा हुआ है[2]।"

हुएनसांग के उक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय कुशीनगर की अवस्था बड़ी ही खराब थी। यद्यपि फाहियान के समय में भी कुशीनगर की बस्ती कम और विरल थी, परन्तु हुएनसांग ने इसे बिल्कुल ध्वस्त पाया था। महलों की प्राचीन दीवारें और नीवें ही बाकी थीं। नगर में लोग बहुत कम रहते थे। उसके सभी मुहल्ले उजड़ गये थे। नगर का प्राकार ज्यों का त्यों ध्वस्तप्राय पड़ा था, जिसका घेरा डेढ़ मील से कुछ अधिक था।

१–यह वर्णन पालि ग्रन्थों में नहीं मिलता है, किन्तु अजन्ता के एक चित्र से पता लगता है कि स्वर्ग से महामाया को अनुरुद्ध निर्वाण स्थल पर बुला कर लाये थे–'हुएनसांग का भारत भ्रमण' पृष्ठ ३११।

२–हुएनसांग का भारत भ्रमण, पृष्ठ ३०२–१५।

कुशीनगर के विहारों की अवस्था भी चिन्तनीय थी। हुएन-सांग ने शालवन उपवत्तन में एक मन्दिर और सात स्तूपों को देखा था, जो प्रायः खण्डहर हो रहे थे। परिनिर्वाण मन्दिर में उस समय तक वर्तमान् विशाल मूर्ति का निर्माण हो चुका था। जहाँ पर कि फाहियान के समय में केवल भगवान् के उत्तर ओर सिर करके निर्वाण प्राप्त करने मात्र का स्थान बना था।

हुएनसांग और फाहियान के वर्णनों से कुशीनगर के इतिहास की अनेक गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। यद्यपि उनके द्वारा वर्णित स्थान काल कौटिल्यवश विनष्ट हो चुके हैं, तथापि उनके वर्णन क्रम से हमें विचार करने में बड़ी सहायता मिलती है। और उनके साथ पालि ग्रन्थों, तथा खोदाई से प्राप्त लेखों के आधार पर हम बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं।

हुएनसांग ने जिन स्तम्भों के होने का वर्णन किया है, उनका पता आज तक नहीं लगा। यदि वे उपलब्ध होते, तो कुशीनगर के इतिहास में बड़ी सहायता मिलती और हम ठीक-ठीक उन स्थानों का निर्देश कर सकते, जिनका कि उल्लेख यात्रियों ने किया है। जन पड़ता है, वे यवनों के शासन-काल में नष्ट कर दिये गये।

इत्सिग का वर्णन

सम्राट् हर्षवर्द्धन के देहावसान के पश्चात् उसका राज्य छिन्न भिन्न हो गया। उत्तर भारत में अराजकता फैल गई। राज्य-लोलुप छोटे-छोटे प्रादेशिक नृपतियों ने साम्राज्य की लालसा से आत्म-विरोध की सृष्टि की; अतः वे सर्वनाश को प्राप्त हुए। उसी समय भिक्षु हुएनसांग की मृत्यु के पश्चात् सन् ६७१ ई० में चीनी भिक्षु इत्सिंग स्वदेश से भारत के लिये प्रस्थान किये और सन् ६७३ ई०

में ताम्रलिप्ति[1] पहुँचे। वे वहाँ तीन वर्ष तक रहे और दस वर्ष नालन्दा के विश्वविद्यालय में। अन्त में चीन लौटते समय वे कुशीनगर भी आये थे। उन्होंने लिखा है—"सारस के पंखों के समान श्वेत शालवृक्षों से परिपूर्ण उस पवित्र स्थान एवं गिलहरियों से युक्त उस उपवन की समाधि-भूमि में यात्रा करते समय अनेक देशों के यात्री तथा भिक्षु नाना दिशाओं से आकर प्रति दिन श्रद्धा और भक्ति पूर्वक समवेत होते मिले थे।"[2]

कुशीनगर और मुकुटबन्धन चैत्य का वर्णन करते हुए इत्सिंग ने लिखा है—"एक बार मैं मुकुटबन्धन-विहार (पान-डा-न) का दर्शन किया। इसी स्थान पर भगवान् बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ नित्य प्रति लगभग सौ भिक्षु भोजन करते हैं। वसन्त और शरद् में (जो यात्रा के लिये अच्छे ऋतु हैं) अकस्मात् बहुत से यात्री इस विहार के दर्शनार्थ पहुँचते हैं।

एक दिन दोपहर के समय अकस्मात् ५०० भिक्षु आ पहुँचे। दोपहर के पूर्व उनके लिये भोजन तैयार करने का समय न रहा। प्रबन्धक भिक्षु ने रसोइये से कहा—'इस अकस्मात् वृद्धि का मैं कैसे प्रबन्ध करूँ?' तब एक बूढ़ी स्त्री ने (जो विहार के उपस्थाक की माँ थी) जबाब दिया—'घबड़ाइये मत, ऐसी घटनायें तो होती ही रहती हैं।'

उसने तुरन्त धूप, द्वीप, अगरबत्ती आदि जलाकर सुगन्धी की और काले रंग की (भगवान् बुद्ध की) मूर्ति को भोजन चढ़ाते हुए यह प्रार्थना की—"यद्यपि महर्षि का निर्वाण हो चुका है,

---

१. वर्तमान् तमलुक, जिला, मेदिनीपुर (बंगाल)।

2. "A recard of the Buddhist Religion" by Itsing. P. 38.

किन्तु अनुभाव वर्तमान् है, अभी बहुत से भिक्षु प्रत्येक दिशाओं से इस पवित्र स्थान की पूजा करने के लिये आये हैं, हम लोगों का भोजन उन लोगों के लिये कम न हो। यह आप के ही शक्ति की बात है। आप समय को देखें।"

उसके बाद प्रत्येक भिक्षु को आसन पर बैठने के लिये कहा गया। जितना भोजन पहले भिक्षुओं को दिया जाता था, उतने में ही आज सब भिक्षु भरपेट खाये और अन्य दिनों जितना भोजन खाने के पश्चात् बचा करता था, उतना बच भी गया! अन्त में सब ने जयध्वनि की और उस मूर्ति के महिमा की प्रशंसा की। मैं स्वयं उस स्थान पर पूजा करने के लिये गया। मैंने उस काले रंग की मूर्ति को देखी, जिसके सामने बहुत भोजन चढ़ाया गया था। जब मैंने इसका कारण पूछा, तब मुझे उक्त कारण बतलाया गया।

चीन के क्यांगनांन के जिले में ऐसी ही मूर्ति पायी गई है। जो लोग उससे वरदान माँगते हैं, उनकी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं। इस मूर्ति की महिमा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गया के सन्निकट महाबोधि विहार के महामुचलिन्द नाग में भी इसी प्रकार की अद्भुत शक्ति है।"[१]

इत्सिग के उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में कुशीनगर के विहारों और भिक्षुओं की अवस्था कुछ सुधरी थी। केवल मुकुटबन्धन-विहार में ही सौ भिक्षु रहते थे। इत्सिग ने जिस काली मूर्ति का वर्णन किया है, वह रामाभार की खोदाई से नहीं मिली है। इस वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय कुशीनगर में प्रधानतः दो भिक्षु-मण्डली थी। एक कुशीनगर की और दूसरी मुकुटबन्धन-विहार की। मुकुट-

१. वहीं, पृष्ठ ३८।

बन्धन विहार, वर्तमान् रामाभार के चैत्य के पास था। उसके नष्टावशेष सन् १९११-१२ की खोदाई से प्राप्त हुए हैं।

तत्कालीन शिष्टाचार

इत्सिंग ने कुशीनगरवासी भिक्षुओं के शिष्टाचार का वर्णन करते हुए लिखा है—"कुशीनगर के भिक्षु समय जानने के लिये पानी के ऊपर एक पात्र रखते हैं। उसके नीचे छोटा सा छिद्र बना होता है। सूर्योदय के पश्चात् जब पात्र सोलह बार पानी में डूब जाता है, तब दोपहर हो गया रहता है। महाबोधि विहार में यही नियम है।"[१]

"दोपहर में भोजन करने के समय, सर्वप्रथम अदरक के एक-दो टुकड़े अतिथियों को दिये जाते हैं। आधा चम्मच या एक चम्मच नमक एक पत्ते पर रखकर सबके सामने रख दिया जाता है। जो नमक परोसता है, वह अपने हाथों को जोड़ कर फैलाये हुए आगे कर, प्रधान भिक्षु (=संघनायक) के सामने घुटने टेक कर 'सम्प्रागतम् (=स्वागतम्) कहता है। तब प्रधान भिक्षु कहते हैं—"सबको बराबर-बराबर भोजन परोसो।"

एक बार भगवान् को शिष्यों सहित किसी से विषाक्त भोजन मिला। तब उन्होंने भोजन देने वाले से कहा—"तू सम्प्रागतम् कहो।" उसके कहने के पश्चात् सब लोगों ने भोजन किया। जैसा कि उस भोजन में बहुत विष था, वह वैसा ही पौष्टिक पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो गया।

किसी भी भाषा में—चाहे वह पूर्व (चीन) की हो या पश्चिम (=भारत) की, इसे अपने इच्छानुसार बोल सकते हैं।

१—देखो, वहीं पृष्ठ १४५।

……। यह 'सम्प्रागतम्' शब्द केवल 'स्वागतम्' का ही पर्याय नहीं है, प्रत्युत इसमें अवश्य कोई रहस्य है !

जो भोजन परोसता है, वह अतिथियों के सामने खड़े हो सम्मान पूर्वक झुककर थाली, रोटी और फल लिये हुए भोजन करने वाले भिक्षु के हाथ से कुछ दूरपर एक-एक करके देते जाता है।……। भिक्षु भोजनोपरान्त एक-एक मुट्ठी भात दूसरों को देने के लिये दाहिने हाथ में लिये जाते हैं।……यदि कोई गृहस्थ दान देता है, तब भोजन के पश्चात् पुण्यानुमोदन किया जाता है। सब भिक्षु गाथा-पाठ करते हैं ॥[१]

महायान प्रदीप की मृत्यु

जिस समय भिक्षु इत्सिंग कुशीनगर आये थे, उस समय उनके साथ महायान प्रदीप भी यहाँ आये थे। वे कुशीनगर पहुँचकर बीमार पड़ गये और उनकी मृत्यु यहीं महापरिनिर्वाण विहार में हो गई।

महायान प्रदीप का चीनी नाम था ता-च्यंग टेंग (Ta-cheng teng), वे हुएनसांग के शिष्य थे। उन्होंने द्वारावती (पश्चिमी स्याम), लंका, दक्षिण भारत की यात्रा की थी और ताम्रलिप्ति में आकर बारह वर्ष तक संस्कृत का प्रगाढ़ अध्ययन किया था।[२]

इत्सिंग ने भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में प्रचलित बौद्ध धर्म का जो विवरण दिया है, उसे पढ़ने से जान पड़ता है कि उस समय कुशीनगर में सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते थे।

१—देखो, वहीं, पृष्ठ ३९।

२—देखो, Memoirs, Chavannes P. 68.

८. मध्ययुग में कुशीनगर की अवस्था

महराज हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् लगभग सातवीं शताब्दी के मध्य भाग से लेकर दसवीं शताब्दी के अन्त तक क्रमशः कुशीनगर की अवस्था गिरती ही गई। इन साढ़े तीन सौ वर्षों के बीच न केवल मल्ल प्रदेश में ही प्रत्युत सारे उत्तरी भारत में अराजकता-सी फैली रही। यशोवर्मा (ई० सन् ७३१) के समय में चीनी भिक्षु 'ताई सं' तीर्थ-यात्रा हेतु यहाँ आये थे। उनके भ्रमण वृत्तान्त से जान पड़ता है कि आठवीं शताब्दी में कुशीनगर की अवस्था अच्छी नहीं थी।[१] सातवीं-आठवीं शताब्दी के बीच की कुछ नामांकित मृण्मयी मुद्रायें कुशीनगर की इमारतों की खोदाई से प्राप्त हुई थीं, जिससे प्रगट होता है कि उस समय यहाँ अनेक राजाओं का प्रभुत्व हुआ और मिट गया। नवीं शताब्दी में कन्नौज के सिंहासन पर वज्रायुध और इन्द्रायुध बैठे। जो पक्के बौद्ध थे। उनके समय में कुशीनगर का थोड़ा-सा सुधार हुआ, तब बौद्ध धर्म का प्रायः अधःपतन हो रहा था। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर बारहवीं शताब्दी के बीच पुनः कुशीनगर की अवस्था बदली और हैहयवंशी राजाओं द्वारा इसका उत्थान हुआ। वर्तमान् माथाबाबा के विहार की खोदाई के समय एक काले रंग के पत्थर पर हैहय काल का लेख मिला था। उस विहार की ईंटों से भी पुरातत्त्व के पण्डितों ने सिद्ध किया है कि उसका निर्माण ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के बीच हुआ था। अतः सभी ने एक मत होकर कहा है कि ग्यारहवीं-बारहवीं-शताब्दी के बीच कुशीनगर में कलचुरी

१—Journal Asiatigue, 1895 Vol II P. 356–366.

(हैहय) वंश के राजाओं ने मूर्ति, स्तूप और विहार की स्थापना की थी। उस समय कुशीनगर में महायानियों का प्राबल्य था।

९. सत्यानाश

बारहवीं शताब्दी के पश्चात् कुशीनगर का इतिहास अन्धकारमय है। हम कह आये हैं कि गुप्त काल के पश्चात् ही कुशीनगर के विहारों की अवस्था खराब होने लगी थी। ह्वेनसांग के समय में स्तूप और विहार ध्वस्त हो रहे थे। इत्सिंग के आने के समय कुशीनगर की दशा पूर्व की अपेक्षा अच्छी नहीं थी। जो भिक्षु विहारों में रहते थे वे कभी-कभी ही भोजनार्थ गाँवों में जाते थे। उनके लिए मठ में ही भोजन तैयार होता था। उन सर्वास्तिवादियों के पश्चात् स्थविरवाद का प्राबल्य हट गया और महायानियों की अधिकता हुई। महायानी विशेषकर तान्त्रिक और दुःशील थे।

इतिहास के पन्नों को उलटने से पता चलता है कि आठवीं शताब्दी में प्रायः सभी भिक्षु अपने विहार की सांघिक सम्पत्ति को वैयक्तिक समझने लगे थे। परस्पर अनादर और फूट का बोलबाला था। भगवान् बुद्ध ने पहले ही कहा था—

"(१) जब भिक्षु सूत्रों को ठीक से नहीं धारण करते, (२) बात मानने वाले नहीं होते, (३) धर्म जानने वाले दूसरों को ठीक से नहीं पढ़ाते (४) स्वार्थी और जोड़ने-बटोरने वाले होते तथा (५) संघ में फूट पैदा हो जाती है, तब सद्धर्म्म का अन्तर्धान अवश्यम्भावी होता है।"[1]

उस समय भिक्षुओं में ये सारी बातें घुस गई थीं और उन्हीं के अपराधों के कारण नये-नये दुश्मन उठ खड़े होते गये। महा-

१—अंगुत्तर नि० ५, ४, २, ६।

पण्डित श्री राहुल सांकृत्यायनजी ने लिखा है—"बुद्ध की सीधी सादी शिक्षाओं से उनका विश्वास उठ चुका था। वे मनगढ़न्त हजारों लोकोत्तर कथाओं पर विश्वास करते थे। बाहर से भिक्षु वस्त्र पहनने पर भी भीतर से गुह्यसमाजी थे। बड़े-बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि आधे पागल हो अपभ्रंश भाषा में निर्गुण गान करते थे। वज्रयान के विद्वान्, प्रतिभाशाली कवि, चौरासी सिद्ध विलक्षण प्रकार से रहा करते थे। कोई पनही (= जूते) बनाया करता था, इसलिये उसे पनहिपा कहते थे। कोई कम्बल ओढ़े रहता था, इसलिये उसे कमरीपा कहते थे। इसी प्रकार डमरू रखने से डमरूपा, ओखल रखने से ओखरिपा आदि कहे जाते थे। ये लोग शराब में मस्त, खोपड़ी का प्याला लिये श्मशान या विकट जंगलों में रहा करते थे। जनसाधारण को ये जितना ही फटकारते थे, उतना ही लोग इनके पीछे दौड़ते थे। बोधिसत्त्व की मूर्तियों तथा दूसरे देवताओं की भाँति इन सिद्धों को अद्भुत चमत्कारों और दिव्य शक्तियों के धनी समझते थे। ये खुल्लम-खुल्ला स्त्रियों और शराब का उपभोग करते थे। राजा अपनी कन्याओं तक को इन्हें प्रदान करते थे। ये लोग त्राटक के कुछ जानकार थे, इसी बल पर अपने भोले-भाले अनुयायिओं को कभी-कभी कोई-कोई चमत्कार दिखा देते थे। कभी-कभी हाथ की सफाई तथा श्लेषयुक्त अस्पष्ट वाक्यों से जनता पर अपनी धाक जमाते थे। इन पाँच शताब्दियों में धीरे-धीरे एक तरह से भारतीय जनता इनके चक्कर में पड़कर कामव्यसनी मद्यप और मूढ़विश्वासी बन गयी थी। राजा लोग जहाँ पर पलटने रखते थे, वहाँ उसके लिये किसी सिद्धाचार्य तथा उसके सैकड़ों तान्त्रिक अनुयायिओं की भी एक बहुत बड़ी पलटन रखा करते थे।

भारतीय जनता इस प्रकार दुराचार और मूढ़ विश्वास के पंक में कंठ तक डूबी हुई थी। ब्राह्मण भी जाति-भेद के विष-बीज को शताब्दियों तक बोकर जाति को टुकड़े-टुकड़े बाँट, घोर गृह-कलह पैदा कर चुके थे। जिस समय शताब्दियों से श्रद्धालु राजाओं और धनिकों ने चढ़ावा चढ़ा कर मठों और मन्दिरों में अपार धन-राशि जमा कर दी थी, उसी समय पश्चिम से तुर्कों ने हमला किया। उन्होंने मन्दिरों की अपार सम्पत्ति को ही नहीं लूटा, बल्कि अगणित दिव्य शक्तियों के मालिक-देवमूर्तियों को भी चकनाचूर कर दिया। तान्त्रिक लोग मन्त्र बल का प्रयोग करते ही रह गये। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ होते-होते तुर्कों ने समस्त उत्तरी भारत को अपने हाथ में कर लिया। नालन्दा को अद्भुत शक्ति वाली तारा टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी गई। नालन्दा तथा बिक्रमशिला के सैकड़ों तान्त्रिक भिक्षु तलवार के घाट उतार दिये गये।

फिर भी प्रश्न होता है कि तुर्कों ने तो बौद्धों और ब्राह्मणों दोनों के ही मन्दिरों को तोड़ा, पुरोहितों को मारा फिर क्या वजह है जो ब्राह्मण भारत में अब भी हैं और बौद्ध न रहे? बात यह है कि ब्राह्मण धर्म में गृहस्थ भी धर्म के अगुआ हो सकते थे, बौद्धों में भिक्षुओं पर ही धर्म प्रचार और धार्मिक ग्रन्थों की रक्षा का भार था। भिक्षु लोग अपने वस्त्रों और मठों के निवास से आसानी से पहचाने जा सकते थे। यही कारण है कि बौद्ध भिक्षुओं को तुर्कों के आरम्भिक शासन के दिनों में ही रहना मुश्किल हो गया। ब्राह्मणों में भी यद्यपि वाममार्गी थे, किन्तु सभी नहीं। बौद्धों में तो सब के सब वज्रयानी ही थे। अतएव वज्रयानियों के फेर में पड़कर सारी जनता विनाश के नजदीक पहुँच गई। जनता समझने लगी हम धोखे में थे। इसका फल

यह हुआ कि जब बौद्ध भिक्षुओं ने अपने टूटे मठों और मन्दिरों को फिर से मरम्मत कराना चाहा तब उसके लिये उन्हें धन नहीं मिला। वस्तुतः इन आचारहीन, शराबी भिक्षुओं को उस समय कौन रुपयों की थैली सौंपता? फल यह हुआ कि बौद्ध अपने टूटे हुए धर्मस्थानों की मरम्मत कराने में सफल न हो सके। इस प्रकार भिक्षु अशरण हो गये। ब्राह्मणों में ये बातें न थीं।"[१]

तात्पर्य यह कि मुसलमानों के अत्याचार रूपी नादिरशाही ने बौद्ध मन्दिरों के प्रति रक्तरंजित पताका फहरा दी। पाठकों को विदित होगा कि आलमशाही की ओर से देवोत्पाटनी (=मन्दिर उखाड़नेवाली) सेनाएँ तैयार की गई थीं। यही नहीं, क़ाफिरों के मन्दिर और विद्यालय ढहा देने का हुक्म निकाला गया था। यहाँ तक कि मूर्ति-पूजा पर भी रोक लगा दी गई थी।

सम्भवतः उसी समय (तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में) कुशीनगर के बौद्ध विहार, स्तूप, स्तम्भ तथा मन्दिर मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिये गये। सन् १८७६ ई० में कुशीनगर के परिनिर्वाण मन्दिर की खोदाई से बहुत-सी जली हुई हड्डियाँ, लकड़ियाँ, और कोयले मिले थे। पश्चिम के बड़े विहारों की खोदाई में भी मनुष्यों की दो खोपड़ियाँ, कुछ हड्डियाँ और जली हुई लकड़ियाँ पाई गई थीं। जो सिक्के मिले, वे भी जले हुए ही थे। इससे जान पड़ता है कि कुशीनगर के सम्पूर्ण विहार तेरहवीं शताब्दी में फूँक डाले गये थे। मन्दिर और मूर्तियाँ तोड़ डाली गई थीं। विहार का सारा धन और सोने-चाँदी की मूर्तियाँ लूट ली गई थीं। भिक्षु तलवार के घाट उतार दिये गये थे। उनकी लाशें यहाँ के विहारों

१—बुद्धचर्य्या की भूमिका।

में ही जल कर राख हो गई थीं![1] श्री ए० सी० एल० कारलाइल और श्री जे० पी० एच० वोगेल[2] भी इससे सहमत हैं।

तिब्बती लामा तारानाथ के इतिहास से हम जानते हैं कि विहारों के तोड़े तथा बहुत से भिक्षुओं को क़त्ल कर दिये जाने पर यहाँ के निवासी शेष भिक्षु भागकर नेपाल, तिब्बत तथा दूसरे देशों की ओर चले गये। कुशीनगर पुनः ध्वंसित और खँडहर हो गया!

1–A. S. R. for 1877–74–79 and 80 P. 20–21.

2–A. S. R. for 1904–5.

द्वादश प्रकरण

कुशीनगर की खोज तथा खोदाई

कुशीनगर के बिहारों के विनाश के पश्चात् उनपर पेड़-पौधे उग आये और धीरे-धीरे पाँच शताब्दियों के बीच उनका ऐसा रूप-परिवर्तन हो गया कि जनता कुशीनगर का नाम तक भूल गई। इसका महत्व और इतिहास प्रमाद के गर्त में समा गया। मुकुटबन्धन विहार और चैत्य से लेकर महापरिनिर्वाण विहार और चैत्य तक टीले तथा जंगल बन गये! उस समय आदमी दिन में भी यहाँ आने में डरने लगे!

१. ईंटों का निकालना

आस-पास के गाँव वाले टीले के बाहरी भाग में चारों ओर खेत बनाने प्रारम्भ किये और बहुत-सी ईंटें निकाल कर अपने घर नाद और पनाले बाँधने के लिये ले गये! अनुरुधवा गाँव के पास का महान् स्तूप—जो खँडहर हो गया था—ईंटों के निकालने से एक छोटे से टीले की भाँति अवशेष रहा! रामाभार के स्तूप से हजारों गाड़ी ईंटें ढोकर सिसवा मठ गईं। वहाँ उनसे वैष्णव महन्त के मठ का निर्माण हुआ! सिसवा मठ की पुरानी कुटी में लगी हुई वे सब ईंटें रामाभार स्तूप की ही हैं, जिनकी माप १७½ × ८½ × ५ इञ्च है।

२. कुशीनगर की खोज

जिन दिनों कुशीनगर का नाम बिल्कुल बदल गया था। आसपास के लोग इसे माथाकुँवर का कोट कहा करते थे, उन्हीं

दिनों सन् १८६१ ई० में जनरल श्री ए० कनिंघम ऐतिहासिक स्थानों की खोज करते हुए यहाँ आये थे। उन्हें कुशीनगर में पाँच टीले मिले थे, जिनमें पहला रामाभार का बहुत बड़ा स्तूप था, दूसरा माथाकुँवर का कोट, तीसरा माथाबाबा का टीला और मूर्ति, चौथा अनुरुधवा गाँव के पास का टीला तथा पाँचवाँ बड़े टीले के दोनों ओर फैले हुए टीले।

उन्होंने रामाभार के देवीस्थान को मुकुटबन्धन चैत्य, रोहनाला को हिरण्यवती नदी तथा माथाकुँवर के कोट को परि-निर्वाण स्थान होने का संकेत किया। उन्होंने लिखा है—"माथा-कुँवर का कोट जो ६०० फ़ीट लम्बा और २०० से ३०० फीट चौड़ा है, इसका सबसे ऊँचा स्थान ३० फीट है। मैं अनुमान करता हूँ, इसका निचला भाग ई० सन् २०० से ६०० के बीच बना होगा। माथाकुँवर रामाभार से उत्तर-पश्चिम १६०० गज़ दूर है, किन्तु श्री बुकानन (Buchanan) ने ४०० गज़ लिखा है।

एक काले-नीले पत्थर की बनी हुई बुद्ध की बड़ी मूर्ति पीपल के पेड़ के नीचे है, जो सम्भवतः ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दी में बनी होगी। मूर्ति बहुत पुरानी नहीं है। यहाँ से ११०० फीट की दूरी पर ईंटों का बना एक स्तूप है। रामाभार और माथाकुँवर के बीच एक बड़ा टीला है, जो ५०० फीट वर्गाकार है, इसे अनु-रुधवा टीला कहते हैं।

हुएनसांग को कुशीनगर से ७०० ली चलने पर बनारस मिला था, सम्प्रति कुशीनगर से बनारस ११२ मील दक्षिण पड़ता है। फाहियान के समय में वैशाली से कुशीनगर १४८ मील दूर पश्चिम था। इस समय १४० मील उत्तर-पश्चिम है। इससे प्रमाणित होता है कि वर्तमान् माथाकुँवर ही भगवान् बुद्ध का

परिनिर्वाण स्थान है और अनुरुधवा गाँव ही कुशीनगर राजधानी ।"[1]

कुशीनगर की खोदाई से यह स्पष्ट हो गया है कि जनरल कनिंघम ने जिन-जिन स्थानों का निर्देश किया था, वे सब ठीक हैं। वर्तमान् महापरिनिर्वाण मन्दिर में ही भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। माथाकुँवर का कोट ही प्राचीन शाल-वन उपवत्तन था और अनुरुधवा गाँव ही प्राचीन कुशीनगर राजधानी।

यहाँ 'अनुरुधवा' और 'माथाकुँवर' शब्दों के सम्बन्ध में प्रचलित विचार-धारा के प्रति भी कुछ लिखना असंगत न होगा। "कुशीनगर का नाम अनुरुधवा क्यों हुआ ?" इस सम्बन्ध में बहुत दिनों से यह प्रचलित है कि आयुष्मान् अनुरुद्ध के नाम पर ही अनुरुधवा हुआ है। किन्तु भली प्रकार विचार करने पर जान पड़ता है कि यह नाम पीछे का है। इसका सम्बन्ध प्राचीनता से नहीं। यद्यपि हम खींच-खाँच कर आयुष्मान् अनुरुद्ध के नाम के साथ इसे जोड़ सकते हैं, किन्तु ऐसा कोई भी ऐतिहासिक आधार नहीं। आयुष्मान् अनुरुद्ध तो भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् कुछ ही दिन कुशीनगर में रहकर राजगृह चले गये थे। पुनः वे राजगृह से कुशीनगर आये थे—ऐसा वर्णन उपलब्ध नहीं।

'माथाकुँवर' शब्द के प्रति भी नाना प्रकार के भ्रामक विचार-प्रचलित हैं। कुछ लोगों के कथन हैं कि मार्तण्ड-कुमार, मत्स्य कुमार, माया-कुमार आदि का ही अपभ्रंश 'माथाकुँवर' है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि 'मतकुमार' (=मृतकुमार) से

1. See. A. S. R. for 1861–62. P. 77–83.

'मत्थकुमार' और मत्थकुमार से माथाकुँवर हो गया है। किन्तु हम देखते हैं कि जिस समय माथाकुँवर जंगल और टीले के रूप में था, उस समय लोग टीले और जंगल को माथाकुँवर का कोट और बुद्ध की उस मूर्ति को मथाबाबा कहा करते थे, जो काले पत्थर की बनी है। जन-समाज न जानने के कारण ही ऐसा मन-गढ़न्त नाम रख लिया है। इस नाम का भी सम्बन्ध प्राचीनता से नहीं है। हम यह जानते हैं कि भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् लगभग सातवीं शताब्दी के अन्त तक शालवन उपवत्तन, मुकुटबन्धन, कुशीनगर आदि नाम ज्यों के त्यों प्रचलित थे। चीनी यात्री इत्सिंग के समय (ई० सन् ६७१-६९५) में ये नाम बदले नहीं थे। वस्तुतः शालवन उपवत्तन से माथाकुँवर का कोट, कुशीनगर से अनुरुधवा और मुकुटबन्धन से रामाभार बारहवीं शताब्दी के बहुत पीछे परिवर्तित हुए हैं।

३. खोदाई

पुरातत्त्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल कनिंघम की रिपोर्ट के अनुसार सन् १८७६ ई० में श्री ए० सी० एल० कारलाइल की अध्यक्षता में पुरातत्व विभाग की ओर से कुशीनगर के टीलों की खोदाई प्रारम्भ हुई। माथाबाबा की मूर्ति के पास वाले विहार तथा माथाकुँवर के कोट के पूर्वी भाग में उस स्थान की खोदाई हुई जहाँ सम्प्रति परिनिर्वाण मन्दिर है। श्री कारलाइल ने उसी वर्ष भगवान् बुद्ध की विशाल मूर्ति को खोद निकाला।

पुनः सन् १९०४ में डा० वोगेल की अध्यक्षता में २८ नवम्बर से लेकर २८ फरवरी तक खोदाई का काम हुआ। उस समय पं० हीरानन्द शास्त्री और पं० दयाराम सहानी ने बड़ी दिलचस्पी से खोदाई का काम कराया।

इस वर्ष बड़े स्तूप के पूरब वाले चौकोर स्तूप (C) की खोदाई हुई। बड़े स्तूप (A) और परिनिर्वाण मन्दिर (B) के दक्षिण ओर की भी खोदाई हुई। मन्दिर के पश्चिम वाले परिनिर्वाण विहार (D) के भी कुछ अंश की खोदाई हुई। इस खोदाई से बहुत सी महत्वपूर्ण वस्तुयें प्राप्त हुईं। खोदाई के कार्य में ९९८) व्यय हुए।

फिर डा० वोगेल की ही अध्यक्षता में १६०६ में जनवरी से लेकर मार्च के बीच खोदाई का काम हुआ, जिसमें १७६९॥-) खर्च हुए। इस वर्ष की खोदाई में बहुत सी मुद्रायें, मूर्तियाँ, लेख आदि वस्तुयें प्राप्त हुईं।

पुनः पं० हीरानन्द शास्त्री की अध्यक्षता में सन् १९०६ के तीन दिसम्बर से लेकर १९०७ के फरवरी मास तक खोदाई का काम हुआ। जिसमें ३७००) व्यय हुए। इस वर्ष पाँच बड़ी और कुछ छोटी इमारतों की खोदाई हुई।

सन् १६०६-१० में यहाँ की इमारतों की मरम्मत कराने में ९८) तथा चौकीदार के लिये एक झोंपड़ी बनवाने में १४२) लगे। इस वर्ष खोदाई का कार्य नहीं हुआ।

फिर सन् १९१० में खोदाई के लिये ३०००) रुपये की सहायता सरकार से मिली और डा० वोगेल के आदेशानुसार जनवरी के अन्तिम सप्ताह से लेकर अप्रैल के मध्य भाग तक खोदाई हुई। उस समय तक सब रुपये समाप्त हो चुके थे। रुपये के अभाव को देखकर तत्कालीन विहार के प्रबन्धक भिक्षु महावीर ने माथाकुँवर की भगवान् की मूर्ति की मरम्मत करने के लिये ६०) दिये। इस वर्ष निर्वाण-चैत्य और कुछ टीलों की खोदाई हुई। पुनः १९११ में पहली दिसम्बर से लेकर मार्च १९१२ तक खोदाई हुई। इस खोदाई में २००००) व्यय हुए।

इन दो वर्षों की खोदाइयों से पं० हीरानन्द शास्त्री ने बहुत से लेख और आश्चर्यजनक चीज़ों का पता लगाया, जिनसे सिद्ध हो गया कि यही स्थान भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण-भूमि है।

सन् १८७६ से लेकर सन् १६१२ तक को खोदाइयों का खुदे हुए स्थानों के साथ इस प्रकार विवरण जानना चाहिये—

(१) परिनिर्वाण मन्दिर

वर्तमान् परिनिर्वाण मन्दिर (B) की खोदाई सन् १८७६ ई० में श्री ए० सी० एल० कारलाइल की अध्यक्षता में हुई थी। जिस समय श्री कारलाइल ने इसे खोदवाना प्रारम्भ किया, उस समय यह एक टीले के रूप में था। १० फीट की गहराई तक खोदने पर बड़ी मूर्ति के ऊपरी भाग मिले। जो पलस्तर से मरम्मत किये गये थे। पुनः थोड़ी-सी खोदाई के पश्चात् ३० फ़ीट लम्बा और १२ फ़ीट चौड़ा मन्दिर मिला। जिसकी दीवारें १० फ़ीट मोटी थीं। बीच में एक मूर्ति टूटे हुए सिंहासन पर उत्तर ओर सिर करके सोई हुई मिली। जो अत्यधिक टूटी हुई थी। उसका बहुत सा भाग ख़राब हो गया था। मूर्ति के ऊपरी हिस्से का बाँया पैर, दोनों नरहर, बाँया हाथ और शरीर का भाग, बिगड़ गया था। सिर और मुख का भाग सम्पूर्ण खत्म हो गया था। बाँयीं भुजा भी लुप्त थी। बाद में खोजने पर सब मिल गये। मूर्ति बलुआ पत्थर से बनी थी। पत्थर काले, लाल, भूरे रंगों से मिश्रित था। पास की ईंटें मज़बूत पलस्तर से ढँकी थीं।

सिंहासन २४ फ़ीट लम्बा था और मूर्ति २० फ़ीट। मूर्ति दाहिने करवट लेटी हुई पश्चिमाभिमुख थी। माप में मन्दिर का बाह्य भाग ४७ फ़ीट ६ इञ्च से ३२ फीट था। इस मन्दिर के पश्चिमी भाग में एक कोठरी या प्रवेश-गृह मिला, जो ३५ फीट

६ इञ्च लम्बा और १५ फीट चौड़ा था। इसकी दीवारें ५ फीट मोटी थीं।

मूर्ति के पास चारों ओर खोदने से उसके बहुत से हिस्से जमीन में गड़े हुए मिले। श्री कारलाइल ने गोरखपुर के डिस्ट्रिक्ट इंजिनीयर श्री पीयर्ट (Peart) की सहायता से मूर्ति और मन्दिर की मरम्मत करायी। मूर्ति के सिंहासन के चारों कोनों पर सम्भवतः पहले एक-एक शिला-स्तम्भ थे, जिनमें से केवल दो मिले। सिंहासन के पार्श्व-भाग पत्थर के तख्तों से बने थे किन्तु खोज करने पर वे भी सब नहीं मिले। प्राप्त तख्तों से केवल एक ही किनारे को ठीक कराया जा सका।

सिंहासन के पश्चिमी भाग में तीन मूर्तियाँ मिलीं, जो प्रत्येक काले पत्थर में ताखे खोद कर बनाई गई थीं, वह अब तक वर्तमान् हैं। उनमें से बाँयें ओर की मूर्ति किसी स्त्री (सम्भवतः मल्लिका) की है, जो लम्बे बालों वाली, अपने हाथों को झुकाये हुये बैठी है। दाँयीं ओर की मूर्ति आयुष्मान् आनन्द की है जो अपने सिर को दाहिने हाथ पर रखे हुए शोकार्त हैं। बीच की मूर्ति सुभद्र परिव्राजक की है, जो त्रिदण्ड को सामने रखकर पालथी लगाये बैठा है। उसके नीचे एक गुप्त कालीन लेख खुदा हुआ था, जो अब तक वर्तमान् है। उसे श्री कारलाइल ने इस प्रकार पढ़ा—

१—देयधर्म्मोयं महाविहारे स्वामिनो हरिबलस्य।
२—प्रतिमां चेयं घटिता दिने संघा सूरेण॥

श्री कारलाइल ने बतलाया कि यह महाविहार हरिबल द्वारा बनवाया गया था और प्रथम-सभा में सूर ने मूर्ति को दान किया था। सम्भवतः यह वही सूर है, जिसने कि भिलसा और साँची में सिंह-शीर्ष युक्त शिलास्तम्भ दान किया था, जिसपर लिखा था—

"सुन्दरे विहारे स्वामिनो सूर सिंहबलिपुत्र रुप्या।"

—किन्तु डा० जे० एफ़० फ्लीट ने उसे इस प्रकार पढ़ा—

१–देयधर्मोयं महाविहार स्वामिनो हरिबलस्य।

२–प्रतिमा चेयं घटिता दिने·········मास्वरेण॥

डा० वोगेल ने दूसरी पंक्ति की आलोचना करते हुए इस प्रकार पढ़ा—"प्रतिमा चेयं घटिता दिनेन माथुरेण" जिससे स्पष्ट हो गया कि यह विहार स्वामी हरिबल का धर्मदान है और मूर्ति मथुरावासी दिन द्वारा बनाई गयी है।

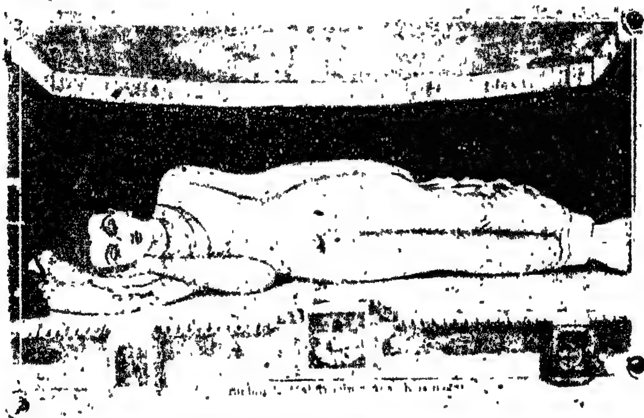
हरिबल कौन था? कहा नहीं जा सकता। लेख को देखकर श्री फ्लीट ने बतलाया कि वह पाँचवीं शताब्दी में रहा होगा। पीछे जब स्तूप की खोदाई से लेख मिले, तब यह भली प्रकार ज्ञात हुआ कि इस मन्दिर और विहार का निर्माण कुमारगुप्त (ई० सन् ४१३-४५५) के राज्यकाल में हुआ था। हरिबल तत्कालीन कोई सेठ था। दिन मथुरा का रहने वाला एक विख्यात शिल्पी था। मथुरा प्रदेश कुशानकाल से लेकर गुप्तकाल तक कला के लिये भारतवर्ष में सबसे धनी स्थान था। यहाँ के शिल्पियों द्वारा निर्मित मूर्तियाँ सारनाथ, श्रावस्ती आदि स्थानों से भी मिली हैं। कुशीनगर की मूर्ति भी मथुरा के ही चकतेदार बलुआ पत्थरों से बनी है।

श्री कारलाइल ने मूर्ति के बिखरे हुए टुकड़ों को खोजकर उसे ठीक किया। मूर्ति के मुख-मण्डल, गर्दन, हाथ और पैरों को रँगा। बालों में काला रँग लगाया। उन्होंने वस्तुतः मूर्ति को ऐसा बना दिया जैसा कि पहले वह निर्माण-काल में रही।

पुनः उन्होंने मन्दिर के भीतर द्वार के पास खोज की। द्वार के दोनों किनारे गड्ढे मिले। उनके पास प्याले के आकार के लोहे के कब्जे, फाटक के कुछ जले हुए हिस्से, कोयले, आदमियों

की बहुत-सी हड्डियाँ और अनेक जली हुई चीजें मिलीं, जिनसे यह अनुमान किया गया कि यह मन्दिर तलवार और आग से नष्ट किया गया था।[१]

श्री कारलाइल ने मन्दिर की छत को ठीक करवा कर, मूर्ति की चारों ओर लोहे का घेरा लगवाया। फाटक भी लोहे की छड़ों से बनवाया तथा उत्तर-दक्षिण दो लोहे के जंगले लगवाये। बाहर वाले प्रांगण की मरम्मत करायी और उसमें भी लकड़ी का एक मजबूत फाटक लगवाया।



परिनिर्वाण मन्दिर की बुद्ध-मूर्ति

मन्दिर के पश्चिम तरफ नीचे जाने के लिये एक प्राचीन सीढ़ी मिली। उसको भी मरम्मत करायी गई। उस वर्ष टीलों की खोदाई कराते समय बड़े स्तूप (A) के उत्तर-पूर्व में एक चतुर्भुज

१–श्री कारलाइल ने लिखा है—It was evident that Buddhism had here been anihilated by fire and sword ! p. 21.

गणेश की मूर्ति मिली थी, जो काले, हरे और नीले पत्थर की बनी थी, वह माप में १ फुट ८ इञ्च ऊँची थी। मन्दिर की दीवार में एक बैठी हुई माया देवी की छोटी-सी मूर्ति काले हरे-पत्थर की मिली थी और एक टूटी हुई विष्णु की मूर्ति भी स्तूप की दक्षिण ओर मिली थी। इन सब मूर्तियों को श्री कारलाइल ने निर्वाण मन्दिर की दीवारों में ताखे बनवाकर बैठा दिये। वे अब तक वर्तमान् हैं।

निर्वाण मन्दिर के सामने का कुँआ उसी वर्ष मिला। उसकी खोदाई करायी गई, जो १२ फीट गहरा था। उसकी मरम्मत भी कराई गई। श्री कारलाइल ने लिखा है—"यह वही कुँआ है जिसे हुएनसांग ने देखा था और इसके जल की प्रशंसा की थी।" उक्त कुँआ नीचे चौकोर और ऊपर गोल है।

(२) परिनिर्वाण-स्तूप

सन् १९०७ ई० में डा० वोगेल ने प्रस्ताव किया कि कुशीनगर में पुरातत्व-अन्वेषण प्रारम्भ किया जाय। उन्हें प्रान्तीय सरकार से आज्ञा मिली, किन्तु इस प्रदेश में भारी अकाल पड़ने के कारण इस विचार को बदल देना पड़ा और सहेट-महेट (श्रावस्ती) की खोदाई का विचार किया गया। इसी बीच कलकत्ता के कुछ बर्मी बौद्ध लोगों ने १०,०००) जमा किया और निर्वाण स्तूप की मरम्मत करने के लिये सरकार से आज्ञा माँगी। आज्ञा देने के पूर्व यह आवश्यक समझा गया कि इस स्तूप के भीतरी भाग की परीक्षा की जाय। सन् १९१० के जनवरी मास में डा० हीरानन्द शास्त्री की अध्यक्षता में खोदाई प्रारम्भ हुई।

परिनिर्वाण स्तूप की (जिसका संकेत छपे हुए मैप पर 'A' है, जो निर्वाण-मन्दिर के पीछे है) जिस समय खोदाई प्रार-

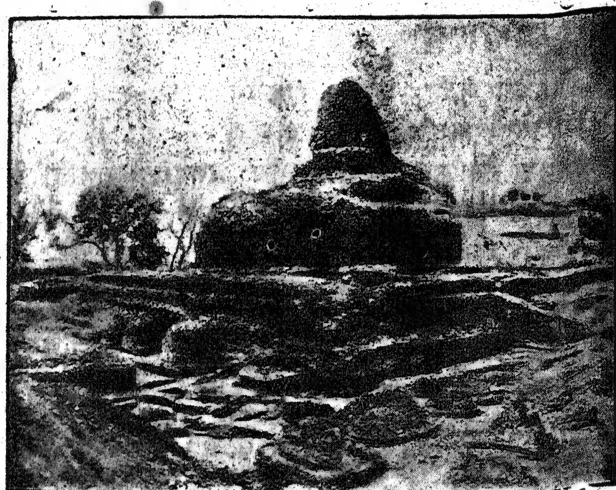
म्भ हुई, उस समय इसका गुम्बज नष्ट हो चुका था। निचला भाग २५ फीट ऊँचा और ५६ फीट गोल था।

खोदाई कराते समय सर्वप्रथम नष्टप्राय गुम्वज को ऊपर से हटाया गया। उसे हटाते हुए बहुत-सी चित्रित ईंटें स्तूप की निचली गोलाई के भाग में मिलीं। उनके साथ 'जयगुप्त' का ताम्बे का सिक्का भी मिला। उसपर उल्टी ओर बाँयें तरफ चलते हुए छः घोड़ों का चित्र बना था। उसकी दाँयी ओर वृत्त में छोटे-छोटे विन्दुओं के साथ 'जयगुप्तस्य' लेख लिखा था।

प्राप्त चित्रित ईंटों से यह सिद्ध हुआ कि प्राचीन इमारतों की चीजें भी इस स्तूप के बनाने में व्यवहृत हुई थीं। स्तूप ऊपरी सतह से २० फ़ीट ऊँचा था। डा० हीरानन्द शास्त्री ने एक १० फीट चौड़े शाफ्ट् (Shaft) को ऊपरी सिरे से स्तूप के केन्द्र तक डाला। सिरे से पाँच फीट की गहराई पर ईंटों से बने दो स्वस्तिक के चिन्ह केन्द्र में देखे गये, जो एक दूसरे से लम्ब रूप में मिलते थे और उनके चारों भाग बालू से ढँके थे। कुछ और नीचे चौदह फीट की गहराई पर एक छेद का पता लगा सावधानी के साथ उसके चारों ओर की ईंटों को हटाने पर एक वृत्ताकार कोठरी मिली, जो २ फीट १ इञ्च गहरी थी। उसका व्यास भी इतना ही था। इस कोठरी में एक ताम्रघट मिला, जिसका मुँह ताम्र-पत्र से ढँका हुआ था। ताम्रपत्र के ऊपर छोटी-छोटी कौड़ियाँ मिलीं, जो शुभ मानी जाती हैं। ताम्रघट बालू से भरा था। उसमें भी बहुत-सी कौड़ियाँ थीं। ताम्रघट की वस्तुओं को निकाल कर उसकी परीक्षा की गई।

ताम्रघट में बालू के साथ जले हुए लकड़ी के कोयले, कौड़ियाँ बहुमूल्य पत्थर और कुछ छोटे मोती पाये गये। उन्हीं के साथ ताँबे की दो नलियाँ भी पाई गईं। एक तो इतनी सूक्ष्म थी कि

टुकड़े-टुकड़े हो गई । दूसरी, जिसकी ऊँचाई २½ इञ्च और व्यास १⅛ इञ्च था, लकड़ी की पट्टी के ढक्कन से ढँकी थी। उसमें राख, मोती, एक छोटा पन्ना (Emerald), कुमारगुप्त के छः चाँदी के सिक्के और एक छोटी-सी चाँदी की नली थी। नली की ऊँचाई १¼ इञ्च और व्यास १/१६ इञ्च था। उसमें एक ७/८ इञ्च



खोदाई से पूर्व का स्तूप

ऊँची और ½ इञ्च व्यास की सोने की नली थी। उन दोनों नलियों के ढक्कन पर पकड़ने के लिये मुठियादार अंगूठियाँ बनी हुई थीं। सोने की नली में केवल भूरे रंग के एक सूक्ष्म पदार्थ और दो तरल बूँदों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला।

ताम्रघट में बालू के साथ सब्ज पदार्थ और कुछ खली पाई गई। ताम्रपत्र पर संस्कृत में निदान सूत्र लिखा था, जिसकी पहली पंक्ति खोद कर लिखी गई थी और अन्य पंक्तियाँ काली

९..

स्याही से। ताम्रपत्र १६.४ इञ्च (४६ से० मी०) लम्बा, ६.२ इञ्च (१५.८ से० मी०) चौड़ा और ⅛ इञ्च (३ मी० मी०) मोटा था। उसकी तौल २ पौण्ड १½ औन्स थी। मुर्चा पकड़ने के कारण बहुत-सी अक्षरें खराब हो गई थीं। उसके उल्टे भाग में तेरह पंक्ति का लेख था। ताम्रपत्र पर धातुओं से नक़ाशी भी की गई थी। लेख की अक्षरें उत्तर गुप्त लिपि की थीं। लेख इस प्रकार था—

१—एवम् मया श्रुतम्=एकस्मिं समयेन भगवान् श्रावस्त्याम् विहरतिस्म जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे [··· ···]

हिन्दी-ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती[1] में अनाथपिंडद[2] के जेतवन आराम में विहार करते थे।



स्तूप से प्राप्त कुमारगुप्त का चाँदी का सिक्का

२—तत्र [खलु भ] गवान = भिक्षुना—म [······] ध [र्मणाम् वो भिक्षवः······देश] यिष्यामि—अपचयम् च तच्च श्रि [णुत······साधु च]

हिन्दी—वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को [आमंत्रित किया—भिक्षुओ! 'भदन्त' कह, भिक्षु भगवान् को प्रत्युत्तर दिये। भगवान् ने ऐसा कहा—प्रतीत्य-समुत्पाद] धर्म [को भिक्षुओ!] कहूँगा। उसे सत्कार पूर्वक सुनो [भली-भाँति]

३—सुष्ठु च मनसि कुरुत भाषिष्ये [धर्मा] ना [माचयः

१—सम्प्रति सहेट-महेट, जिला गोंडा तथा बहराइच की सीमा पर।

२—पालि में अनाथपिण्डिक।

कतमो यदुतऽस्मिं सतिदम् भव] ति। अस्योत्पादादि [दमुत्पद्यते यदुता]

हिन्दी—कहे हुए धर्म को अच्छी तरह मन में करो [भिक्षुओ ! यह भव कैसे होता है ?] यह जो प्रतीत्य समुत्पाद आदि का [उत्पन्न होना है]

४—अविद्या प्रत्ययाः संस्काराः संस्कार प्रत्ययम् विज्ञानम् [विज्ञान प्रत्ययम् नामरूपम् नामरूप—प्र र] य [ऽयम्] षडायतनम् षडा [यतन प्रत्ययः स्पर्शः]

हिन्दी—अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, [विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से] छः आयतन, छः [आयतन के प्रत्यय से स्पर्श]

५—स्पर्श-प्रत्यया वेदना-वेदना प्रत्यया तृष्णा-तृष्णा [प्रत्ययम् उपादानम् उपादान प्रत्ययो भुवो] भुव प्रत्यया जाति [जाति प्रत्यया जरा]

हिन्दी-स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के [प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव] भव के प्रत्यय से जाति [जाति के प्रत्यय से जरा]

६—मरण-शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्योपा [यासा भवन्ति । एवम् अस्य केवल] स्य मह [तो दुः] ख-स्कन्धस्य समुद [यो भवति ····अय]

हिन्दी-मरना, शोक करना, रोना पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी [होती हैं, इस तरह सारा] दुःख समुदाय उठ खड़ा [होता है।]

७—[मु] च्यते धर्माणाम्=आचयः धर्माणाम्=अपचय कतमः [·····] तद न भवत्यस्य निरोधादि [········] निरुध्यते [अविद्या निरोधाद्-संस्कार]

हिन्दी—इस धर्म को कहते हैं [कैसे] इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है ? अविद्या के रुक जाने से संस्कार-

८–नि [रो] धः संस्कार निरोधाद् विज्ञान निरोधाः विज्ञान निरोधान ना [मरूप नि] रोधाः नामरूप निरोधात् षडायतन निरोधाः ष [डायतन निरोधात् स्पर्श निरोधाः]

हिन्दी–रुक जाते हैं, संस्कार के रुक जाने से विज्ञान रुक जाता है, विज्ञान के रुक जाने से [नामरूप] रुक जाते हैं, नाम-रूप के रुक जाने से छः आयतन रुक जाते हैं, छः [आयतन के रुक जाने से स्पर्श रुक जाता है]

९– स्पर्श निरोधाद् =वेदना–निरोधो वेदना–नि [रोधात्-तृष्णा-] नि [रोधाः तृष्णा] निरोधाद् = उपादा [न] निरोधाः उपादान निरोधाद् =भुव–निरोधाः [भुव–निरोधाज्जाति निरोधो]

हिन्दी—स्पर्श के रुक जाने से वेदना रुक जाती है, वेदना के रुक जाने से [तृष्णा] रुक जाती है, तृष्णा के रुक जाने से उपादान रुक जाता है, उपादान के रुक जाने से भव रुक जाता है, [भव के रुक जाने से जाति रुक जाती है]

१०—जा [ति] निरोधाज्जरा-मरण-शोक—[परिदेव]- दुःख-[दौर्मनस्यो] पायासानिरुध्यन्ते एवम्-अस्य केवलस्य मह [तो] दुःख-[स्कन्धस्य निरोधो]

हिन्दी—जाति के रुक जाने से जरा, मरण, शोक [रोना-पीटना], दुःख [बेचैनी] और परेशानी रुक जाती है, इस तरह सारे दुःख [समुदाय का निरोध]

११—भवति अयमुच्यते धर्म्मा [णाम् अपच-] यः धर्म्मा-णाम् वो भिक्षवः..आ [चय] म् च देशयिष्यामी=ऽपचयम् च इति मे य [दुक्तम = इदमे]

हिन्दी—होता है। इस धर्म को कहते हैं, जो भिक्षुओ! मैं धर्म कहूँगा, मेरे कहे हुए का सत्कार करना चाहिये।

१२—[त] त्=प्रत्युक्तमि [दमऽ] वोचद्=भगवाना [त्तम] नासस्ते भिक्षवो भगवतो [भाषितम् अ] भ्यनन्द [न् । दे] यधर्मोयं अने [क विहार]—स्वामिनो हरिबलस्य य [द=ऽ—

हिन्दी—भगवान् ने यह कहा, उन भिक्षुओं ने सन्तुष्ट हो भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। यह अनेक विहारों के स्वामी हरिबल का धर्मदान है।

१३—त्र] पु [ण्यम्] तद् [भ] वतु सर्व-सत्वानाम् = अनुत्तर-ज्ञानावाप्तये। साक्य [भि-] क्षुर्धर्मानन्दो सर्वत्रानुमोदते [महापरि नि] र्वाण चैत्ये ताम्रपट्ट इति ॥

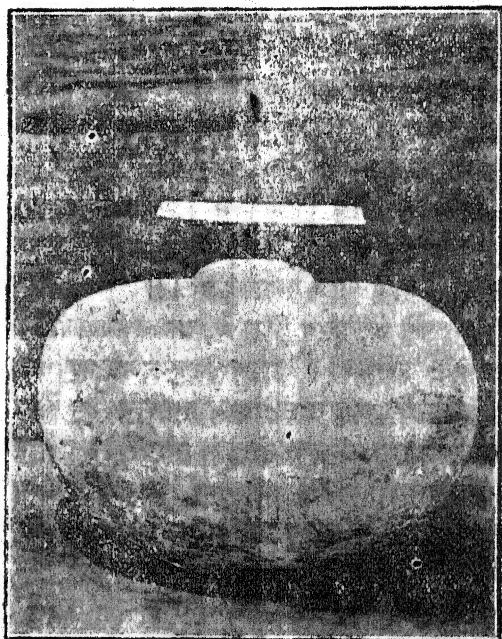
हिन्दी—इससे जो पुण्य हुआ है, वह सब जीवों के अनुत्तर-ज्ञान की प्राप्ति लिये हो। शाक्य भिक्षु धर्मानन्द सबके लिये अनुमोदन करते हैं। यह ताम्र-पत्र महापरिनिर्वाण चैत्य में है।

इस ताम्र-पत्र की बारहवीं पंक्ति से स्पष्ट है कि इस परिनिर्वाण चैत्य को उसी हरिबल ने बनवाया था, जिसने कि परिनिर्वाण मन्दिर और मूर्ति का निर्माण कराया था। हरिबल की बनवायी हुई यहाँ से अनेक प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।[१]

तेरहवीं पंक्ति से यह जान पड़ता है कि भिक्षु धर्मानन्द हरिबल के आचार्य तथा पाँचवीं शताब्दी के प्रथम भाग में परिनिर्वाण विहार कुशीनगर के संघनायक थे, जिन्होंने महापरिनिर्वाण चैत्य को हरिबल द्वारा बनवाकर ताम्रघट आदि स्थापित किया था।

१—Gupta inscriptions. p. 262. A. S. R. for 1906-7 P. 46.

ताम्र-घट आदि पांचवीं शताब्दी के कुमारगुप्त के समय के थे, इसलिये यह सोचकर कि और भी पुरानी चीजों का पता लगाया जाय, उस स्थान से नीचे की ओर भी खोदाई प्रारम्भ हुई। चोटी से ३४ फीट की गहराई पर सतह से ९



स्तूप से प्राप्त ताम्र-घट

फीट की दूरी पर केन्द्र में एक वृत्ताकार आँगन मिला। उससे भी नीचे २ फीट ६ इञ्च खोदा गया, किन्तु सड़ी हुई लकड़ी के टुकड़ों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। अब नीचे से पानी आने लगा, इसलिये खोदाई रोक देनी पड़ी।

वह वृत्ताकार आँगन एक छोटे-से स्तूप के रूप में था। जो ९ फीट ३ इञ्च ऊँचा था, उसमें एक छोटा ताखा १ फुट ६ इञ्च ऊँचा, १ फुट ६½ चौड़ा और १ फुट ७½ इञ्च गहरा था। ताखे में एक भगवान् की मृण्मयी बड़ी ही सुन्दर और भव्य मूर्ति पालथी मारे पश्चिमाभिमुख मिली।

उस छोटे स्तूप के सिरे पर एक लम्बा, किन्तु संकीर्ण छेद था, जो सम्भवतः छाता रखने का स्थान रहा होगा। ताखे में उस प्रकार की ईंटें भरी थीं, जैसी कि बड़े स्तूप के बनाने में व्यवहृत हुई थीं। ताखे में चूने का वैसा ही पलस्तर भरा हुआ था, जैसा कि स्तूप के अन्य भागों में। यह पता लगाने के लिये कि यहाँ और भी कोई ताखा है या नहीं? स्तूप की चारों ओर एक सुरङ्ग २ फीट चौड़ी और २ फीट १०½ इञ्च ऊँची खोदी गयी, किन्तु अन्य भागों में स्तूप बराबर मिला, ताखे नहीं थे। स्तूप के भीतरी भाग की पानी तक परीक्षा की गई, परन्तु केवल कुछ जले हुए लकड़ी के कोयले ही मिले। भगवान् की मूर्ति के शिरो-प्रकाश वाले भाग के कुछ ऊपर मध्य भाग में एक मिट्टी का छोटा बर्तन पाया गया, जिसमें मिट्टी और जले हुए कोयले थे। सम्भवतः वह किसी भिक्षु की चिता से लाकर स्थापित किया गया था।

जिस समय (पाँचवीं शताब्दी) बड़ा स्तूप बना होगा, उस समय यह छोटा स्तूप अवश्य वर्तमान रहा होगा और छोटे स्तूप को ढँक कर ही बड़ा स्तूप बना होगा। इस छोटे स्तूप को नहीं तोड़ा गया। इसे तोड़ कर परीक्षा किये बिना यह नहीं जाना जा सकता कि यह छोटा स्तूप कब बना?

(३) चौकोर-स्तूप

परिनिर्वाण स्तूप (A) के पास पूरब खोदाई के समय एक विशाल स्तूप की नींव मिली थी, जो अब तक वर्तमान् है। छपे मैप में उसे C से चिह्नित किया गया है, किन्तु मैंने उसका नाम चौकोर स्तूप रखा है।

इस स्तूप की खोदाई सन् १९०४-५ में डा० बोगेल ने करवायी थी। उस समय यह एक बड़े टीले के रूप में ९० फीट चौकोर था। इसकी उत्तर ओर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। यह स्तूप बड़ा और विचित्र-सा था, किन्तु इसमें कोई भी स्मारक या धातु नहीं पायी गयी। उत्तर वाली सीढ़ी के पास खोदाई कराने से एक नई इमारत प्रगट हुई, जिसकी ईंटें १९″× १०″×३″ थीं। इसके एक कोने में कुशान काल के १२ ताँबे के सिक्के मिले, जिनमें ८ कनिष्क के थे और ४ उसके पूर्व अधिकारी कादीफीशस के। ये सिक्के जली हुई चीजों के साथ मिले थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि उक्त विहार आग से जलाया गया था। डा० वोगेल का कथन है कि यह विहार सम्भवतः प्रथम शताब्दी ईस्वी में विध्वंस किया गया था। पीछे गुप्तकाल में इसकी नींव को ढँक कर नये विहार का निर्माण हुआ था।

इसको पूरब ओर एक पत्थर का छोटा तख्ता मिला। जिसपर तीन पंक्तियों में घिसे हुए लेख के साथ दो स्तूप बने थे। उस तख्ते की ऊंचाई ८ से० मी० थी।

(४) छोटे-स्तूप

परिनिर्वाण स्तूप के उत्तर-पूर्व कोने में बहुत से छोटे-छोटे स्तूप (H, U) हैं, जिनकी खोदाई श्रीकारलाइल ने सन् १८७६

में करवाई थी। बड़े स्तूप के पास उसकी सतह से नीचे नींव के पास पाँच स्तूप मिले, जिनके व्यास क्रमशः ८ फीट ४ इञ्च, ७ फीट ८ इञ्च, ९ फीट, ६ फीट और ३ फीट १० इञ्च हैं। इनके साथ और भी छोटे-छोटे स्तूप मिले। इनके बीच में खोदवाने पर उनसे कुछ छोटी-छोटी मूर्तियाँ मिली थीं, जिनमें एक भगवान् बुद्ध की बैठी हुई मूर्ति काले-नीले रंग के पत्थर की बनी थी, जो एक फुट ४ इञ्च ऊँची थी। उस पर नीचे की ओर एक पुरानी कुटिल शैली की अक्षरों में लेख था—

"ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतु तेष्यान् तथागताह्यवदत।
तेषञ्च यो निरोधः एवं वादी महाश्रमणः॥"

अर्थ—हेतु (=कारण) से उत्पन्न होनेवाले जितने धर्म हैं, उनका हेतु तथागत बतलाते हैं। उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते हैं) यही महाश्रमण का वाद (=सिद्धान्त) है।

निर्वाण स्तूप के उत्तर-पूरब छोटे-छोटे स्तूपों की खोदाई करवाते समय एक लालरंग को मृण्मयी बुद्ध-मूर्ति मिली। जो अपने दाँये हाथ को उठाये हुए अभय-मुद्रा में थी। मूर्ति का सिर लुप्त था, किन्तु पीछे थोड़ी दूर पर वह मिल गया। जब सिर को जोड़ा गया, तब मूर्ति २ फीट २ इञ्च ऊँची हो गई।

स्तूप के पूरब की खोदाई में एक धातु का घण्टा लोहे की छड़ से लगा हुआ मिला। एक और भी घण्टे का टुकड़ा और तीन छड़ें मिलीं। सम्भवतः ये घण्टे स्तूपों के ऊपर लगे हुए पत्थर के छाते में लगे थे। उसी स्थान पर एक चतुर्भुजी गणेश की मूर्ति मिली, जो काले, हरे और नीले पत्थर की बनी थी। मूर्ति की ऊँचाई १ फुट ८ इञ्च थी। पुनः इनकी (H. U) खोदाई सन् १९११-१२ में हुई थी, किन्तु कोई विशेष वस्तु नहीं प्राप्त हुई।

(५) छोटे स्तूप और मठ

निर्वाणस्तूप (A) और मन्दिर (B) के दक्षिण के स्तूप और मठ की खोदाई सर्वप्रथम श्रीकारलाइल ने करायी थी। पीछे भी समय-समय पर खोदाई का काम होता रहा, जो सन् १६१२ में पूर्ण हुआ। यह स्तूप, मठ और इमारतें जो मैप पर F से चिह्नित हैं—निर्वाण स्तूप और मन्दिर के दक्षिण दूर तक फैली हुई हैं।

सन् १८७६ ई० में श्रीकारलाइल को इनमें एक६ फीट व्यास-वाला स्तूप मिला, जो बड़े स्तूप के दक्षिण सटा हुआ है। एक विष्णु की भग्नमूर्ति भी पाई गई, जो पीछे निर्वाण-मन्दिर (A) की दीवार में बैठा दी गई। एक छोटी-सी खण्डित सारिपुत्र का मूर्ति पाई गई। उसपर यह लेख लिखा हुआ था—

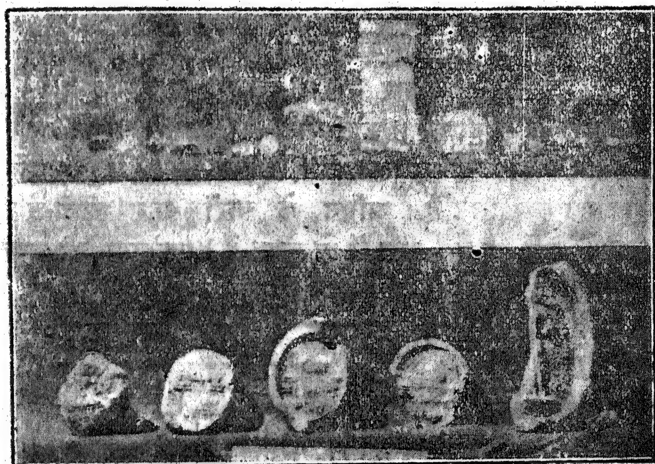
"......(ते) संयुवाच तेसं च यो निरोधा ...सङ्घसारि-पुत्रस्य।"

उसी मूर्ति के एक भाग के ऊपर भगवान् के निर्वाण के आकृति की एक २½ इञ्च लम्बी मूर्ति बनी थी, जिसमें भगवान् दाँयी ओर से लेटे थे। दूसरे भाग पर दो मूर्तियाँ बनी थीं। एक मूर्ति पालथी मारे ध्यान-मुद्रा में थी और दूसरी खड़ी वरद-मुद्रा में। ध्यान-मुद्रावाली मूर्ति मध्म भाग में खण्डित थी।

मन्दिर (B) के पीछे मिट्टी की पकाई हुई बीस मुहरें मिलीं, जिनपर लेख खुदे हुए थे। वे मुहरें सम्भवतः पिछली शताब्दियों की थीं। उनमें एक सबसे बड़ी मुहर पर तीन स्तूप के चिह्न थे।

पुनः सन् १९०४-५ में डा० वोगेल ने इनकी और दूर तक खोदायी करवायी। उस समय बहुत से छोटे-छोटे स्तूप प्रकाश में आये। उनमें दो चित्रित ईंटों से सजे थे। मन्दिर (B) के

दक्षिण में एक मोटी दीवारवाली चौकोर इमारत मिली। इसके द्वार के दोनों कोने में एक-एक मृण्मयी भगवान् की मूर्तियाँ मिलीं, जो पद्म-सिंहासन पर बैठी हुई थीं। दुर्भाग्यवश दोनों मूर्तियाँ भग्न थीं। पीछे उनके खण्डित भाग को इकट्ठा करके उन्हें ठीक किया गया।



१. खोदाई से प्राप्त शरीर-धातु रखने की कुछ डिब्बियाँ
२. मिट्टी से बनी कुछ मुद्रायें

सन् १९११-१२ में पं० हीरानन्द शास्त्री ने निर्वाण-मन्दिर (**B**) के दक्षिण-पश्चिम के कोने के स्तूप की खोदाई करवायी थी। उससे एक मिट्टी का घड़ा मिला, जिसमें राख और स्वच्छ जल भरा था। घड़ा स्तूप के सिरे से लगभग ४ फ़ीट नीचे कुछ धातु के टुकड़ों के साथ मिला था।

(६) परिनिर्वाण-विहार

परिनिर्वाण मन्दिर (B) के उत्तर-पश्चिम, जो मोटी दीवारोंवाली बड़ी इमारत (D) है, उसकी खोदाई श्रीकारलाइल ने प्रारम्भ कराई थी। जब सन् १९०४-५ में डा० वोगेल ने उसकी खोदाई पूर्ण रूप से करानी प्रारम्भ की, तब उससे बहुत-सी महत्वपूर्ण वस्तुयें प्राप्त हुईं थीं। यह इमारत एक प्राचीन विहार है, जिसका नाम परिनिर्वाण विहार था। यह १५० फ़ीट वर्गाकार है। इसकी बाहरी दीवारें ९ फ़ीट और भीतरी दीवारें ४ फ़ीट मोटी है, जिससे प्रगट होता है कि यह विहार कई मंजिला था। इसके बीच में ७४ फ़ीट वर्गाकार एक आँगन है। आँगन के चारों ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी हुई हैं। बीच में दो कुँआ हैं। एक कुँआ की जगत सतह से ७ फ़ीट की ऊँचाई पर है और दूसरे की सतह से कुछ नीचे। निचले कुँआ से खोदाई के समय लेख-युक्त ई० सन् ९०० की एक मिट्टी की मुहर भी पाई गई थी। इस विहार की वर्तमान् नींव से छः फ़ीट ऊपर पूर्व ओर एक पनाला जाता हुआ दीखता है। इन्हीं कुछ कारणों से पुरातत्त्व मनीषियों का कहना है कि पुराना विहार आठवीं शताब्दी तक नष्ट हो गया था और पुनः नवीं शताब्दी में उसी की दीवारों के ऊपर दूसरा विहार बनाया गया था।

इस विहार का प्रधान-द्वार पूर्व की ओर है। पास में एक १७ फीट लम्बा और १० फीट चौड़ा प्रवेश-गृह है।

इस विहार की पूर्णतः खोदाई सन् १९०५-६ में हुई थी। सन् १९१२ में भी भीतरी भाग की कुछ परीक्षा की गई थी।

1—A. S. R. for 1905-6, P. 63.

खोदाई से मिली हुई चीजों का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है :—

१—एक छोटा सा ताम्र-पत्र मिला था, जिस पर गुप्तकालीन अक्षरों में "ये धर्म्मा हेतु प्रभवा" आदि तीन पंक्तियों में लेख खुदा हुआ था। जिसका फोटो श्री कारलाइल ने छपाया है।

२—बहुत-सी चित्रित और नक़ाशीदार ईंटें प्राप्त हुईं, जिनमें सब से बड़ी ईंट १५ इञ्च × ११½ इञ्च × ४ इञ्च है।

३—प्रवेश-गृह में कोयले और लोहे मिले, जो सम्भवतः इस विहार के द्वार की किवाड़ से सम्बन्धित रहे होंगे।

४—छः ऐसी मिट्टी की मुहरें पाई गईं, जिन पर मूर्तियाँ बनी हुई थीं। एक मुहर ५ × ४ से० मी० अंडवृत्ताकार थी। उस पर भगवान् बोधि वृक्ष के नीचे भूमि-स्पर्श मुद्रा में कमल-पुष्प पर बैठे हुए थे। मुहर के बनने का ससय ई० सन ९०० था। दूसरी मुहर भी अंडवृत्ताकार थी। उस पर मैत्रेय बोधिसत्त्व की मूर्ति बनी हुई थी। तीसरी मुहर गोल थी। उस पर बुद्ध की तपश्चर्यावाली मूर्ति थी, जिसकी हड्डियाँ दीख रही थीं। चौथी मुहर गोल थी। उस पर भी भगवान् की मूर्ति बनी हुई थी। ऐसे ही पाँचवीं और छठीं मुहरों पर भी।

५—बहुत-सी पकायी हुई मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुईं, जिनमें अधिकांश पर लेख लिखे हुए थे। सम्भवतः ये मुहरें पारसल (Parcels) और पत्र आदि भेजने के समय व्यवहृत होती थीं।[१] पालि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उनका वर्णन मिलता है। हर्षचरित में भी हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं।[२] यहाँ उनका संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है:—

---

१. देखो, A. S. R. for 1906-7 P. O. S. 8

२. हर्षचरित, पृष्ठ ५२।

संख्य

१

१८

१

२१

२

६

लेख और अनुवाद	आकार
श्री-बन्धन-महाविहारे [र] आर्य-भिक्षु संघस्य। [श्रीबन्धनमहाविहार के आर्य भिक्षुसंघ की (मुद्रा)।]	गोल
श्रीमहापरिनिर्वाण-महाविहारियार्य भिक्षु संघस्य। [श्रीमहापरिनिर्वाण महाविहार में रहनेवाले आर्य भिक्षु-संघ की (मुद्रा)।]	अण्डवृत्ताकार
......हुर। [अर्थ अस्पष्ट है।]	,, ,,
श्रीमहापरिनिर्वाण-विहारियार्य भिक्षु-संघस्य [श्रीमहापरिनिर्वाण विहार में रहनेवाले आर्य भिक्षुसंघ की (मुद्रा)।]	गोल
[बा] सुकस्य। [बासुक की (मुद्रा)।]	,,
[बतान श्रीप्रभ]।	,,

संख्या	लेख और अनुवाद
१	अप्रम [ाद्]।
१३	अभिधा-सिद्धि।
७	कुसलः।
१	[स] त्वमति।
४	ताराबल।
१	,,
२	ताराश्रवः।
१	यह्वाकस्य।
	[यहाक की मुद्रा)]।
१	नन्निकस्य।
	[नन्निक की मुद्रा]।
१	प्रभाक
९	×
३	×
१	×

आकार	माप	पंक्ति	ईस्वी सन्
अण्डवृत्ताकार	१·७×१ से० मी०	,,	९००
,,	१·६×६ ,, ,,	,,	,,
,,	१·५×५ ,, ,,	,,	,,
गोल	१·४ से० मी० व्यास	१	६५०
अण्डवृत्ताकार	१·५×७ से० मी०	,,	,,
गोल	१·५ से० मी० व्यास	,,	,,
,,	१·७ ,, ,,	,,	१०००
अण्डवृत्ताकार	२×·६ ,, ,,	,,	,,
,,	२×१·६ ,, ,,	,,	,,
,,	·६ से० ऊँचाई (अपूर्ण)	,,	×
गोल	१·८ से० मी० व्यास	५	७००
,,	३·२ ,, ,,	४	×
,,	१·९ ,, ,,	५	×

संख्या	लेख और अनुवाद
९	श्रीमद् एरण्ड महाविहारियार्य भिक्षु-संघस्य। [श्रीमद् एरण्ड* महाविहार में रहनेवाले आर्य भिक्षुसंघ की (मुद्रा)]।
१	[श्रीमहा] परिनिर्वाण [विहारियार्य] भिक्षुसंघस्य। [श्रीमहापरिनिर्वाण विहार में रहनेवाले आर्य भिक्षुसंघ की (मुद्रा)]।
१	......संघस्य। [......संघ की (मुद्रा)]।
१३	घण्डकस्य। [घण्डक की (मुद्रा)।
९	विधि सम्परस्य। [विधि सम्पर की (मुद्रा)]।

* एरण, जिला सागर, मध्यप्रान्त (सी०

आकार	माप	पंक्ति	ईस्वी सन्
„	३ „ „	२	७५०
„	२ से० मी० व्यास	३	६००
गोल	२·५ से० मी० व्यास	२	×
„	१·८ „ „	१	७००–१०००
„	२·२ „ „	„	„

पी०)।

संख्या	लेख और अनुवाद
१७	ताराश्रयः ।
१६	अप्रमाद
२३	प्रशान्त श्रीप्रभ ।
७	अभिप्रासिद्धि ।
२३	शान्तज्ञान ।
१२	आनन्द सि [ं] हस्य ।
	[आनन्द सिंह की (मुद्रा)] ।
१९	गङ्गाजस्य (?) ।
	[गङ्गाज की (मुद्रा)] ।
१५	वासुकस्य ।
३	,,
१	वासु [कस्य] ।
	[वासुक की (मुद्रा)] ।
९	श्रीन्द ।
७	ताराश्रयः ।
१	,,

आकार	माप	पंक्ति	इस्वी सन्
अण्ड वृत्ताकार	१·२ ,, ,,	,,	,,
गोल	१·६×१ ,, ,,	,,	,,
,,	२ से० मी० व्यास	,,	,,
,,	१·८ ,, ,,	२	,,
,,	,, ,,	१	,,
,,	१·५ ,, ,,	,,	,,
,,	२ ,, ,,	,,	,,
,,	१·८ ,, ,,	,,	,,
,,	१·७ ,, ,,	,,	,,
अण्ड वृत्ताकार	१·७×·५ से० मी०	,,	,,
अण्ड वृत्ताकार	१·६×१ से० मी०	१	७००–१०००
,,	१·७×१·२ ,, ,,	,,	,,
,,	१·६×·६	,,	,,

संख्या

१
१

५
५
२
२
६
१
४
९

१
४
२
९

लेख और अनुवाद	आकार	मा
सुप्रबुद्ध।	,,	¾"×½"
ताराश्रयस्य।	गोल	१·६ से० मी
[ताराश्रय की (मुद्रा)]।		
तार [I] मित्र	,,	१·७ ,,
ताराशरण।	,,	१·६ ,,
,,	,,	१·४ ,,
[तारा] शरण।	,,	१·५ (?)
ताराबल।	,,	१·४ ,,
ताराक (?) (ऊपर में ॐ का चिन्ह)	,,	१ से० मी०
यज्ञपालित	अण्ड वृत्ताकार	२·२×१ ,,
विक्काकस्य।	गोल	२ से० मी
[विक्काक की (मुद्रा)]।		
,,	अण्ड वृत्ताकार	१·६×·८ से
शीलगुप्त।	गोल	१·७ से० मी
सीलगुप्त	,,	,,
अभिप्रासिद्धि।	अण्ड वृत्ताकार	१·६×·६ से

संख्या	लेख और अनुवाद
१	रत्नमति ।
१	देनुकस्य । [देनुक की (मुद्रा)] ।
८	कुशलः ।
४	कमलश्रीप्रभ ।
१	[प्र] श [ा] न्त श्रीप्रभ ।
१	कमल [प्र] भ ।
१	सर्व्वसिद्धि ।
१	सर्व्वमित्र ।
१	यरवुक [स्य] । [यरवुक की (मुद्रा)] ।
२	पद्मावला ।
१	[स] वकस्य [सर्वक की (मुद्रा)] ।
१	..... शील ।
१	दूमाश्चरण
१	[ब्रह्म] दत्तः ।

आकार	माप	पंक्ति	ईस्वी सन्
गोल	१·४ से० मी० व्यास	,,	,,
अण्ड वृत्ताकार	१·८×·६ से० मी०	,,	,,
,,	१·५×·५ ,,	,,	,,
गोल	१·७ से० मी०	,,	,,
अण्ड वृत्ताकार	१·६×·६ से० मी०	३	,,
गोल	१·६ से० मी० व्यास	१	,,
,,	१ से० मी० व्यास	१	,,
अण्ड वृत्ताकार	१×·६ से० मी०	,,	,,
,,	१·६×·८ ,,	,,	,,
गोल	१·५ से० मी० व्यास	,,	,,
अण्ड वृत्ताकार	१·१×·८ से० मी०	,,	,,
,,	×	×	,,
,,	१·६×·८ से० मी०	१	,,
,,	१·८×·७ ,, ,,	,,	,,

संख्या	लेख और अनुवाद
१	यागदत्तः ।
१	[भूरद्ध] रदत्तस्य । [भूरद्धरदत्त की (मुद्रा)] ।
२	वल्लभ ।
१	श्रीममा [क] ।
१	प्रिय···गुप्त ।
२	[हर] कस्य ।
१	[वाला]··· ।
२	···आर्य ।
१	[द] हुक ।
१	···मनस्य [···मन की (मुद्रा)] ।
१	[श्री] मद् ि[द] न्नस्य [श्रीमद् दिन्न की (मुद्रा)] ।

आकार	माप	पंक्ति	ईस्वी सन्
अण्ड वृत्ताकार	२'२×'६ से० मी०	१	७००–१०००
,,	१'५×'५ ,,	,,	,,
गोल	१ से० मी० व्यास	,,	,,
अण्ड वृत्ताकार	१'१ से० मी० ऊँचाई	,,	,,
गोल	१'५ से० मी० व्यास	२	,,
अण्ड वृत्ताकार	१'७×'५ से० मी०	१	,,
,,	×	२	,,
गोल	२ से० मी० व्यास	१	,,
अण्ड वृत्ताकार	१ से० मी० ऊँचाई	,,	,,
गोल	१'५ से० मी० व्यास	,,	७००.
,,	३'५ ,, ,,	१	७००–१०००

संख्या

१

१

२

१

१

१

१

१

२

१

१

लेख और अनुवाद	आकार	माप
वीरसेनस्य।	अण्ड वृत्ताकार	१·५×१ से०
···केरिः।	,,	१¾"×१½"
श्रीबलः।	,,	१·५×१ से०
श्री स[े]नस्य। [श्रीसेन की (मुद्रा)]।	गोल	३ से० मी०
(घिसे हुए लेख के साथ बैठा हुआ बैल)	गोल	२ से० मी०
लाचेकस्य। [लाचेक की (मुद्रा)]।	अण्ड वृत्ताकार	१·९×·७ से०
शान्तज्ञान। (?)	गोल	१ से० मी०
(ऊपरी भाग में दो कलहंस और निचले भाग में घिसा हुआ लेख)।	,,	१·५ ,,
विनीतमत।	,,	१·२ ,,
[छत्र] दत्त।	अण्ड वृत्ताकार	१·३×५ से०
[दिवा] करप्रभ।	,,	२×·७ ,,

संख्या

३
२३
१
२
१
२
१
१

२
३
५

लेख रहित मुद्रायें

वर्णन	आकार	मा
बीच में अस्थि-पञ्जर युक्त बुद्ध-मूर्ति ।	गोल	१'५ से० म
बुद्ध-मूर्ति तपश्चर्या की आकृति में बैठी हुई ।	”	”
” ” ” खड़ी हुई ।	”	१'६ ”
दाँयी ओर कलहंस के चित्र ।	अण्ड वृत्ताकार	१'६×१ सं
बाँयी ” ” ” ।	”	१'६×'७
त्रिवंक बिजली ।	”	१'६×१
फीते की झालर से सजा हुआ आभूषण	गोल	२ से० मी
वृत्ताकार आठ विन्दुओं के बीच एक विन्दु का चिन्ह ।	अण्ड वृत्ताकार	१×'७ सं
चार चौकोर उठे हुए भाग ।	”	३×३ से०
तीन ” ” ” ” ।	गोल	३ से० मी
” ” ” ” ” ।	”	२'५ ”

६—इन मुहरों के अतिरिक्त परिनिर्वाण विहार (D) से छोटे-छोटे ११ तख्ते मिले थे, जिन पर घिसे हुए लेखों के साथ भगवान् बुद्ध की नाना मुद्राओं की मूर्तियाँ थीं। लेख अत्यधिक घिस जाने के कारण पढ़े नहीं जा सके। श्रीवोगेल ने इनका विस्तृत वर्णन किया है।

(७) प्राचीन विहार

परिनिर्वाण विहार (D) के दक्षिण ओर चार भागों में बँटा हुआ एक महान् विहार है, जो परिनिर्वाण विहार (D) से प्राचीन है। इसे छपे हुए मैप पर L. M. N. O से चिह्नित किया गया है। इस विहार के चारों भाग परस्पर मिले हुए हैं। इसकी खोदाई सन् १९०५-७ में हुई थी। इसके चारों भागों का वर्णन इस प्रकार है—

विहार L (एल्)

प्राचीन विहार के उत्तरी भाग के पूरब वाले उस विहार का नाम L रखा गया है, जिसके आँगन में एक २ फ़ीट ८ इञ्च वर्गाकार कुँआ है।

सन् १८७५ ई० में (जब कि श्रीकारलाइल यहाँ आये थे) यह विहार एक टीले के रूप में था और जब सन् १९०५-६ में श्रीवोगेल ने इसकी खोदाई प्रारम्भ की, तब इसके ऊपर एक फलों का बग़ीचा था। पास में ही निर्वाण-मन्दिर के ब्राह्मण पुजारी तथा चौकीदार की झोपड़ी बनी थी।

खोदाई से ज्ञात हुआ कि इस विहार की एक कोठरी को छोड़कर शेष सब कोठरियाँ पक्की कंकरीट से बनी थीं, जिनका

१—A. S. R. for 1906–7 P. 66–67.

फर्श दुगुना था। इससे जान पड़ता है कि इस विहार का संस्कार दो राजाओं के समय में हुआ था। इस विहार का प्रधान-द्वार पूर्व-मुँह था। खोदाई के समय एक सीढ़ी मिली, जो सम्भवतः ऊपरी छत या दुमंजिले पर जानेवाली थी। बहुत से कंकरीट के टूटे हुए भागों के मिलने से यह प्रतीत होता है कि यह विहार अवश्य दुमंजिला था। इसकी सतह पर दो फीट ऊँची कंकरीट की तह और ईंटों के टुकड़ों का ढेर पड़ा था। उनके ऊपर ३ फीट मोटी टूटे हुए बर्तन आदि की तह थी। इस विहार में लकड़ी के बहुत से कोयले मिले। अनुमानतः ये कोयले द्वार की किवाड़, चौखट और धरन के जले हुए भाग थे। इन कोयलों की एक फीट मोटी तह बिछी थी, जो प्राचीन फर्श पर थी। इससे ज्ञात होता है कि इस विहार के एक बार ध्वंसप्राय हो जाने के पश्चात् पुनः नवीन विहार का निर्माण हुआ था।

प्राप्त वस्तुयें

१—आँगन के बरामदे में दो छोटे-छोटे काष्ठ-स्तम्भ मिले, जिन पर सम्भवतः १०१५ ई० के नेपाली चित्र-पटल बने थे, जो एक विहार का संकेत करते थे। विहार में एक दालान बनी थी। दालान में काषाय-वस्त्रधारी एक भिक्षु बैठे थे।

इस बात से पुरातत्त्व के पण्डितों ने अनुमान किया है कि यह विहार चित्रित था। इसके काष्ठ-स्तम्भ और धरनें भी चित्राङ्कित थीं।

२—आँगन के बीचवाले कुँआ की खोदाई में टूटे हुए बर्तन और ईंटें मिलीं। ६ फीट की गहराई पर गुप्तकालीन तीन मिट्टी की मुहरें भी प्राप्त हुईं।

पहली मुहर अण्डवृत्ताकार थी, जिसका विस्तार ५.५ X ४.५ से० मी० था। उसके किनारे टूट गये थे। ऊपरी भाग में

दो शाल-वृक्षों के बीच मृत-शरीर रखने की द्रोणी (सन्दूक) बनी थी। निचले भाग में दो पंक्तियों में ई० सन् ४०० का यह लेख खुदा हुआ था—महापरिनिर्वाणे चातुर्दिशो भिक्षुसंघः।

दूसरी मुहर बिल्कुल घिसी हुई थी। तीसरी मुहर गोल थी। उसका व्यास २ से० मी० था। उसके ऊपरी भाग में कुछ अस्पष्ट चित्र बने थे। निचले भाग में दो पंक्तियों में लेख खुदा हुआ था, जो अत्यधिक खराब हो गया था। उसे इस प्रकार पढ़ा गया—[श्रीमहापरिनिर्वाण-विहार भिक्षुसंघः]।

३—इस विहार के बरामदे में पकायी हुई मिट्टी की एक अण्डवृत्ताकार खण्डित मुहर मिली। उसकी सतह ३.३×२.२ से० मी० थी। लेख नष्टप्राय था—·····रक्षित (?)।

४—एक कोठरीमें से २.५ से० मी० व्यास वाली एक गोल मुहर मिली। उस पर दो पंक्तियों में ई० सन् ७०० (?) का यह लेख खुदा था—[श्रीमहापरिनिर्वाण-विहार आर्य भिक्षुसंघः]।

५—खोदाई कराते समय एक मृण्मयी नली मिली, जो दो भागों में खण्डित थी। उसके साथ १६ खुरदरी पकायी हुई मिट्टी की गेंदें भी मिलीं। इत्सिंग ने भी इन गेंदों का वर्णन किया है।[१] इस प्रकार की गेंदें कुशीनगर की खोदाई से पर्याप्त संख्या में मिलीं हैं।

६—एक मृण्मयी गरुड़ पक्षियों की मूर्ति की पंक्ति मिली। उसमें से एक पक्षी का सिर कुँआ में पाया गया। दूसरा एक और गरुड़ इस विहार की एक कोठरी में मिला था।

७—एक पीतल की गोल धूपदानी मिली, जिसकी मुठिया उससे अलग हो गई थी। वहीं ऐक पीतल की त्रिपाई भी पा गई।

१—देखो, A Record of the Buddhist Religion P. 91.

८—चार धातु के बर्तन एक-दूसरे में रखे हुए मिले, जिनपर घोड़सवार के चित्र बने हुए थे और जो सम्भवतः गुप्तकालीन थे।

९—कुछ धातु के बने औजार सतह से थोड़ी ऊँचाई पर दीवार में मिले।

१०—एक ई० सन् ५०० की मृण्मयी खण्डित मुहर मिली। उसकी ऊपरी सतह गोल थी, किन्तु मुहर अण्डवृत्ताकार थी। उसकी भुजायें ४-२×३ से० मी० थीं। ऊपरी भाग में एक ताड़ का वृक्ष चित्रित था और निचले भाग में एक पंक्ति में यह लेख था—[आ] यष्टि-वृद्धै।

११—अच्छे पालिशदार अनेक मिट्टी के घड़ों के कण्ठ पाये गये।

विहार M (एम्)

विहार L के पश्चिम सटा हुआ एक दूसरा विहार है, जिसकी माप ३८ फीट ४ इं० × ३९ फीट २ इं० है। इसमें उत्तर-पश्चिम ओर ५ कोठरियाँ हैं। बीच में एक चौकोर पोखरी है, जो १३ फीट ६ इञ्च × १० फीट १० इञ्च × २ फीट है। यह ईंटों से बँधी हुई है। ईंटें १५ इञ्च × ८ इञ्च × २ इञ्च हैं। खोदाई से यह ज्ञात हुआ कि इस पोखरी में दक्षिण और पूरब से पानी आता था।

इसके पनाले का सम्बन्ध पूरब वाले विहार L से था। इसके उत्तर-पश्चिम कोने में एक ढँकी हुई नाली पानी को बाहर निकालने के लिये बनी थी। विहार की फर्श कंकरीट से बनी थी, जिसकी ढाल उत्तर-पश्चिम ओर है।

प्राप्त वस्तुयें

१—इस विहार में बहुत-से जली हुई लकड़ी के कोयले मिले, जो किवाड़, चौखट और धरन की लकड़ी के जान पड़ते थे।

२—आँगन के पूर्व भाग में एक खण्डित मुहर मिली, जिसकी ऊँचाई ५ से० मी० थी। उस पर केवल दो अक्षर अवशेष थे। मुहर ई० सन् ७०० की जान पड़ती थी— ·····श्रयः।

३—एक ई० सन् ४०० की गुप्तकालीन ऐतिहासिक मुहर मिली, जो अण्डवृत्ताकार थी। उसकी सतह ५×३.२ से० मी० थी। उसके ऊपरी भाग में प्रज्वलित चिता का चित्र था। चिता के दाँये ओर घुटने टेके हुए आयुष्मान् महाकाश्यप का चित्र बना था। बाँयें ओर का चित्र अस्पष्ट था। निचले भाग में एक पंक्ति में यह लेख खुदा हुआ था—श्रीमकुटबन्धे संघ।

४—एक और अंडवृत्ताकार मुहर मिली, जिसकी सतह ३.३×२.६ से० मी० थी। उसपर ई० सन् ५०० की गुप्त-शैली में लेख था—सिहत्रात।

५—इस विहार की खोदाई से सात धातु के बर्तन मिले, जिनमें चार फूल के कटोरे थे।

विहार N (एन्)

विहार L और M के दक्षिण ओर के विहार का नाम N रखा गया है। इसमें उत्तरवाले दोनों विहारों से दरवाजे गये हुए हैं और यह अपने दक्षिण वाले विहार O से भी मिला हुआ है। यह विहार अन्य विहारों की अपेक्षा छोटा है। इसमें ७ कोठरियां के साथ एक बड़ा-भवन (हॉल) है। इसके उत्तरी भाग में एक उपोशथागार है। खोदाई के समय इसके द्वार पर दो मिट्टी के बर्तन मिले। यहाँ से लकड़ी के खम्भों के मिलने से जान पड़ता है कि उपोशथागार में लकड़ी के खम्भे लगे हुए थे। इस विहार के नीचे एक छोटे विहार की दीवारें मिलीं, जिनसे प्रगट होता है कि प्राचीन विहार के नष्ट हो जाने पर इसका निर्माण हुआ था।

प्राप्त वस्तुयें

१—इस विहार की बाहरी दीवार के पश्चिम ओर टूटे हुये बहुत अधिक बर्तन मिले।

२—एक बड़ी लोहे की करछुल मिली, जो सम्भवतः पाकशाला के काम में आती थी।

३—बहुत-से मिट्टी के बर्तनों के साथ एक मुहर मिली। मुहर पर 'आर्याष्ट-वृद्धै' लेख खुदा था। उसकी आकृत विहार L से पायी गई उक्त लेखवाली मुहर-सी थी।

४—आटा पीसने की एक चक्की और मूसल मिले थे।

विहार O (ओ)

प्राचीन विहार के दक्षिणी भाग को O से चिह्नित किया गया है, जो विहार N के दक्षिण ओर है। इस विहार के बीच में एक बहुत बड़ा आँगन है। आँगन के चारों ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी हैं। यह विहार वर्गाकार है। इसकी प्रत्येक बाहरी दीवार ११० फ़ीट लम्बी है। उनकी चौड़ाई ५ फ़ीट है। आँगन के चारों ओर की दीवारें ४ फ़ीट २ इञ्च मोटी हैं और छोटी कोठरियाँ ३ फ़ीट ६ इञ्च। ईंटों की माप १४ इञ्च से ८½ इञ्च × ९ इञ्च से २ इञ्च × २ इञ्च से २½ इञ्च है। यहाँ की ईंटें उसी प्रकार की हैं, जैसी कि निर्वाण-स्तूप (A) के निचले भाग में मिली थीं। इस विहार में चारों ओर पाँच-पाँच कोठरियाँ हैं।

खोदाई से ज्ञात हुआ कि इस विहार में भी काष्ठ-स्तम्भ लगे थे। इस विहार का प्रधान द्वार-पूर्व-मुँह था। द्वार के प्रवेश-

गृह में एक मन्दिर था. जो सारनाथ आदि स्थानों के मन्दिरों के समान था।[१]

प्राप्त वस्तुयें

१—इस विहार की कोठरियों को सफ़ाई कराने के समय एक जली हुई धरन पूरब से पश्चिम पड़ी हुई मिली।

२—प्रवेश-गृह में एक वृहत् मृण्मयी भगवान् की मूर्ति एक पत्थर पर खुदे हुए लेख के साथ मिली। मूर्ति का सिंहासन भी बना हुआ पाया गया। मूर्ति पर खुदा हुआ लेख बिल्कुल घिस गया था। उसकी लिपि प्राचीन कुशान काल की ब्राह्मी थी। इस लेख से यह प्रमाणित हुआ कि इस प्राचीन विहार की नींव कनिष्क के समय में पड़ी थी। लेख इस प्रकार पढ़ा गया—'य कुशान।' डा० वोगेल ने इसे—यकुशान [गार] होने की सम्भावना प्रगट की, जो ठीक जँचता है।

३—मन्दिर (प्रवेश-गृह) के बाहरी आँगन में लाल पत्थर की एक भगवान् बुद्ध की मूर्ति कई भागों में खण्डित मिली। इसमें भगवान् दाँयें हाथ को उठाये अभय-मुद्रा में थे। मूर्ति के आधार पर दो पंक्ति में यह लेख था—देयधर्मोय [शा] क्य भिक्षोः [क्षोर] भदन्त सुविरस्य कृति [ ] दिन्नस्य।

इससे स्पष्ट है कि इस मूर्ति को बनानेवाला वही मथुरावासी दिन्न शिल्पी था, जिसने कि परिनिर्वाण-मन्दिर (B) की मूर्ति को बनाया था। अतः यह मूर्ति कुमार गुप्त प्रथम (ई० सन् ४१३-४५५) के शासनकाल में बनी थी।

१—विस्तार के लिए देखो, A. S. R. for 1906-7, P. 48.

४—एक चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का सोने का सिक्का मिला, जो प्राचीन विहार और निर्वाण-मन्दिर (B) के बीच पाया गया।

५—इस विहार के पूर्वी दीवार से १९ फ़ीट ६ इ० की दूरी पर एक मृण्मयी मुहर मिली, जो टीले की सतह से ३ फीट ६ इ० नीचे थी। मुहर पर ई० सन् ४०० का गुप्तकालीन दो पंक्तियों में यह लेख खुदा था—'श्रीविष्णुद्वीप-विहारे भिक्षु संघस्य।' मुहर अंडवृत्ताकार की। उसकी सतह ६×४-८ से० मी० थी। किनारा चित्रित था। ऊपरी भाग में एक वृक्ष का चित्र बना था जो उभरी हुई पहाड़ी पर दीख पड़ता था।

६—आटा पीसने की चक्की और मूसल मिले, जो प्रवेश-द्वार तथा एक कोठरी में पाये गये।

७—एक पीतल का कटोरा और दो ताँबें की करछुलें मिलीं। करछुलें २१.५ से० मी० लम्बी थीं।

८—एक लोहे का चाकू, एक छोटी कुल्हाड़ी और बहुत-सी लोहे की छोटी काँटियाँ मिलीं। काँटियों की लम्बाई १२ से १५ से० मी० थी।

९—एक हाथी की मूर्ति पाई गई। कुछ मिट्टी के दीपक भी मिले।

१०—विहार के बाहरी भाग में बारह मिट्टी की मुहरें मिलीं। सब पर दो पंक्तियों में यह लेख खुदा था—श्रीमहापरिनिर्वाण विहारे भिक्षुसंघस्य। मुहरें गोल थीं। उनका व्यास २ से० मी० था। वे ई० सन् ६०० में निर्मित हुई थीं।

(८) उत्तरी घेरे के विहार और स्तूप

परिनिर्वाण स्तूप (A) और परिनिर्वाण मन्दिर (B) के

उत्तर बहुत से छोटे छोटे विहार और स्तूप हैं, जो परिनिर्वाण-विहार (D) और परिनिर्वाण स्तूप के पास से जानेवाली दीवारों के बीच घिरे हुए हैं। परिनिर्वाण-विहार (D) के पूर्वोत्तरी कोने से एक ३ फ़ीट १ इ० मोटी दीवार पूर्व-मुँह लगभग ६० फ़ीट तक गई है और दूसरी (K) परिनिर्वाण-स्तूप (A) के उत्तर ओर से ३ फ़ीट ४ इ० मोटी उत्तर मुँह १४५ फ़ीट तक। दोनों आगे की ओर टूट गई हैं, किन्तु खोदाई से ज्ञात हुआ है कि ये परस्पर मिली हुई थीं। इन दोनों दीवारों के बीच घिरे हुए विहार और स्तूपों को छपे मैप पर G, K, Q, T, V, W से चिन्हित किया गया है। इनकी खोदाई सन् १८७६ से लेकर १९१२ तक समय-समय पर हुई थी।

ये विहार और स्तूप विहार D के पूरब ३० फ़ीट की दूरी से प्रारम्भ होते हैं। खोदाई के समय इन्हें भूमि की सतह से ९ फ़ीट की गहराई पर पाया गया। ये तीन भागों में बँटे हुए हैं। विहार का पहला भाग मौर्य साम्राज्य काल का जान पड़ता है। प्राप्त सिक्कों से स्पष्ट है कि यह गुप्त साम्राज्य के उदय-काल में भी वर्तमान था। यह विहार D की अपेक्षा बहुत प्राचीन है, क्योंकि इसकी ईंटें नाप में १९ इ०×१२ इ०×४ इ० हैं, और इसकी सतह विहार D से ६ फीट ९ इ० नीचे है। इसकी कुछ ईंटें २५ इ०×१४ इ०×५ इ० के नाप की भी मिली हैं, जो मौर्य कालीन हैं और सम्भवतः छत की खपरैल के काम में लाई जाती थीं। दूसरा भाग स्तूपों का है, जो दसवीं शताब्दी से पहले का नहीं प्रतीत होता क्योंकि इन स्तूपों का आकार पीछे प्रचलित आकार से मिलता है। तीसरा भाग क्षत्रप-काल का है। उससे एक दामसेन क्षत्रप का सिक्का भी पाया गया है।

प्राप्त वस्तुयें

१—परिनिर्वाण मन्दिर के पश्चिम और विहार Q के दक्षिणी-पश्चिमी कोने से बाहर खोदाई कराते समय श्री कारलाइल को एक कुँआ मिला था, जिसका वर्णन किया जा चुका है। ठीक उस कुँआ के पास ही विहार Q की कोने वाली कोठरी में भी एक कुँआ मिला, जो वर्गाकार है और सम्भवतः पीछे का है।

२—खोदाई के समय विहार Q के प्रवेश-द्वार पर जले हुए कोयले के ढेर मिले। इससे पुरातत्त्व-मनीषियों ने अनुमान किया कि यह विहार आग से जलाया गया था।

३—विहार Q के उत्तर-पश्चिम के कोने की कोठरी में वर्तमान् सतह से ५ फ़ीट नीचे बहुत ईंटें एक-दूसरी पर रखी हुई मिलीं, जिनको माप २५इ० X १४ इ० X ५ इ० थी।

४—कुओं के उत्तर-पूर्व और पुरानी इमारत की छत के ४ फी० ३ इ० ऊपर एक फर्श मिला। यहीं एक खण्डित मुहर मिली, जिसपर गुप्तकालीन अक्षरों में 'केसरी' लिखा हुआ था।

५—एक गुप्तकालीन मिट्टी की मुहर ९ फ़ीट की गहराई पर मिली। मुहर अंडवृत्ताकार थी। उसकी सतह १½ इ० X १ इ० थी। उसके ऊपरी भाग में चक्र और कछुये के चिन्ह बने थे। निचले भाग में यह लेख था—कुमारामात्यस्य। ऐसी मुहरें बसाढ़ की खोदाई से भी मिली हैं।[1]

६—एक चाँदी का सिक्का पश्चिमी क्षत्रप दामसेन (ई० सन् २२३-२३६) का विहार Q से मिला।

७—ई० सन् ४०० की दो अंडवृत्ताकार मुहर विहार से

1—A. S. R. for 1903-4, P. 103 and 107, no 3.

मिलीं। उनकी सतह १३/४ इ०×११/२ इञ्च थी। उनके ऊपरी भाग में दो शाल वृक्षों के बीच मृत-शरीर रखने की द्रोणी (सन्दूक) बनी थी। निचले भाग में दो पंक्तियों में यह लेख खुदा था—महापरिनिव्व [ा ण ि] भक्षु संघस्य।

८—एक और मुहर चौथी शताब्दी की उक्त मुहर जैसी ही मिली। उस पर लेख था—महा-परिनिर्वाण-भिक्षुसंघ। यह मुहर १० फ़ीट ६ इ० नीचे पाई गई थी।

९—एक मुहर उत्तर वाली कोठरी की बाहरी दीवार के समीप मिली। उसपर खड़े हुए मैत्रेय बोधिसत्त्व की मूर्ति के साथ एक छोटा-सा मेज़ बना हुआ था।

१०—कुँआ के पूर्व ओर मथुरा के बलुये पत्थर के अधिकांश टुकड़े मिले। एक मिट्टी की बड़ी मूर्ति के टुकड़े पाये गये। वहीं खण्ड-युक्त मिट्टी की बनी मगराकार धूपदानी मिली, जो मिट्टी के अच्छे काम का सर्वोत्तम नमूना है।

११—विहार Q से राख से भरे एक बर्तन में दो मुहरें मिलीं, जिनपर हारीति और उसके पुत्र की मूर्तियाँ बनी थीं।

१२—एक वर्गाकार मुहर मिली। जिसका व्यास ३/४ इ० था। उसपर दो हिरण घुटने टेककर बैठे हुए थे। बीच में 'धर्म-चक्र' का चिह्न था। नीचे की ओर यह लेख था—महापरिनिर्वाण।

१३—विहार V में एक मूर्ति का सिंहासन मिला, जिससे यह ज्ञात हुआ कि यह एक मन्दिर था। उसकी खोदाई कराते समय एक मूर्ति मिली, दुर्भाग्यवश उसका ऊपरी भाग खत्म हो गया था। वह मूर्ति अपने बाँये पैर को नीचे करके ललितासन में बैठी हुई थी। उसके एक पैर में पायजेब थी। उसके पादपीठ के सामने दो अज्ञात उपासक दीख पड़ते थे। एक का शिर टूट गया था। समूची मूर्ति खोखली मिट्टी के एक कुन्दा-

ती थी। नाप में २फ़ीट १ इ० ऊँची और २ फ़ीट ८ इ० लम्बी थी।

१४—स्तूप W और उसके पास के चबूतरे की खोदाई के समय बहुत-सी मिट्टी की भग्न मूर्तियाँ और बर्तन मिले। एक टूटी हुई मुहर भी मिली, जो पत्थर पर खुदी हुई थी। मुहर पर छः अक्षरें थीं, जो पाँचवीं शताब्दी की जान पड़ती थीं। उनमें दो ही पढ़ी जा सकीं। सम्भवतः इस मुहर पर किसी व्यक्ति का नाम था—······पाल।

१५—विहार K और स्तूप G के बीच में कुछ मिट्टी के बर्तन मिले, जो मनुष्य के आकार के थे। वहीं पर एक गरुड़ पक्षियों के मूर्तियों की पंक्ति मिली, जिसमें केवल दो गरुड़ अवशेष थे।

(६) प्राचीन धर्मशाला

उत्तरी घेरे के विहार और स्तूपों के उत्तर थोड़ी दूर पर प्राचीन धर्मशाला की इमारतें हैं। इन्हें छपे हुए मैप पर P. I. J. से चिह्नित किया गया है। इनकी खोदाई सन् १९०६-७ और १९१०-११ में हुई थी। खोदाई से पूर्व इनके ऊपर खेत थे। देखने से इनके अस्तित्व का पता नहीं लगता था। जब सन् १९०६ में सरकार ने इनके ऊपर के खेतों को खरीदी और खोदाई प्रारम्भ हुई, तब ये इमारतें खेत की सतह से नीचे मिलीं।

खोदाई से ज्ञात हुआ कि ये इमारतें प्राचीनकाल में धर्मशाला थीं, जो तीन भागों में बटी हुई थीं। इमारत I और J यात्रियों के ठहरने के लिए बनी थीं तथा P रसोईघर के काम में आती थी

सम्प्रति बौद्ध-विहार से जो मार्ग परिनिर्वाण-स्तूप को जाता है, वह इमारत P और I को बिचली दीवार के ऊपर से होकर गुजरता है। उस मार्ग के पश्चिम ओर इमारत P पड़ती है।

यह १०२′ ९″×६७′ ६″ आयताकार है। इसमें उत्तर दक्षिण चार-चार कोठरियाँ हैं और पश्चिम ओर तीन। पूर्वी हिस्सा खुला आँगन है। इस इमारत के पश्चिम-दक्षिण में एक प्रवेश मार्ग भी बना हुआ है। दक्षिण की लम्बी कोठरी में, (जो २६′ ९″×१३′ ९″ है) बहुत से चूल्हे मिले, जिससे प्रमाणित हुआ कि यह इमारत अवश्य पाकशाला के काम में आती थी। इसके उत्तर ओर की छोटी कोठरी सम्भवतः एक मन्दिर था।

मार्ग से पूरब ओर की इमारत I का घेरा १०३′×९७′ है। इसमें चारों ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं। कोठरियों की बीच की भूमि ६७′७″×६६′६″ है। बीच में एक ४४′ वर्गाकार २′ गहरी हौज (Tank) है। इसका प्रवेश-द्वार पूर्व-मुँह है। प्रवेश-द्वार पर एक भगवान् की मूर्ति ध्यान मुद्रा में मिली थी। मूर्ति एक ईंटों के बने चबूतरे पर पाई गई थी। चबूतरा ४′३″×५′ ६″×९″ था। द्वार पर दो पत्थर के खम्भे भी लगे हुए मिले थे।

इस विहार के आँगन से कुछ लिखित मुहरें भी पाई गईं थीं, जो परिनिर्वाण विहार (D) से मिली मुहरों के समान थीं और सम्भवतः ई० सन् ९०० इनका निर्माण-काल था।

इमारत I के पूर्व ओर की इमारत का नाम J रखा गया है, जो एक मार्ग से इमारत I से पृथक हुई है। इसकी अभी तक पूर्ण खोदाई नहीं हुई है। डा० वोगेल का कथन है कि मकान I और J विहार नहीं थे, ये धर्मशाला थे, इनमें यात्री ठहरा करते थे[1]। ऐसे ही पं० हीरानन्द शास्त्री का कहना है कि मकान P एक रसोइयाघर था, I और J में ठहरे हुए यात्री इसी में भोजन पकाते थे।[2]

---

१. A. S. R. for 1906-7, P- 54.
२. A. S. R. for 1910-11, P. 68.

(१०) उपोशथागार

चौकोर स्तूप (C) के उत्तर-पूर्व थोड़ी दूर पर खेतों की सतह से ५ फीट नीचे सन् १९०५-६ में एक इमारत मिली, जो उस समय माथाकुँवर-कोट से बाहर उत्तर-पूर्व पड़ती थी। मिट्टी की ऊँचाई आदि से वहाँ इमारत होने का लेश मात्र भी भान नहीं होता था। ग्रामीण-किसान उसके ऊपरी भाग को खेत बनाकर समतल कर दिये थे। उसे छपे मैप पर E से चिह्नित किया गया है।

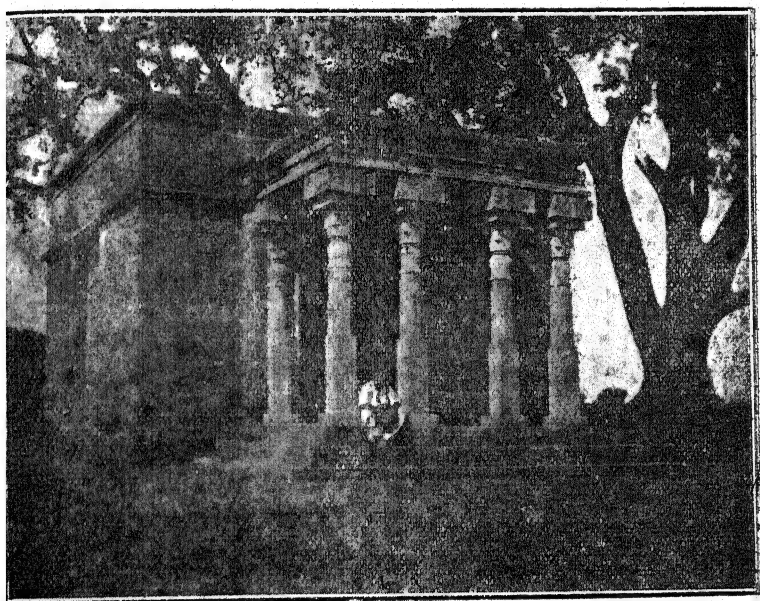
खोदाई से ज्ञात हुआ कि यह इमारत उपोशथागार है, जहाँ प्रतिपक्ष की पूर्णिमा और अमावस्या को भिक्षु एकत्र होकर सांघिक-कर्म करते थे। यह उपोशथागार पूर्व से पश्चिम ७१′ ६″ लम्बा और उत्तर से दक्षिण ६७′ ६″ चौड़ा है। इसकी बाहरी दीवारें ३′ ६″ और भीतरी २′ ८″ मोटी हैं। इसका प्रधान द्वार पूर्व-मुँह है। एक और भी छोटा द्वार दक्षिण-पश्चिम कोने से चौकोर स्तूप (C) की ओर जानेवाले मार्ग में है। इस उपोशथागार के बीच में एक बहुत बड़ा सन्निपात-भवन (हॉल) है। इसमें से कुछ लकड़ी के खम्भे और लोहे के कब्जों (Tenons) के अतिरिक्त अन्य कोई भी विशेष वस्तु नहीं प्राप्त हुई।

(११) माथाकुँवर-मन्दिर

परिनिर्वाण मन्दिर (B) से दक्षिण-पश्चिम ४०० गज दूर माथाकुँवर का मन्दिर है, जिसे माथाबाबा भी कहते हैं। सन् १८६१ में जनरल कनिंघम ने मन्दिर की विशाल काली बुद्ध मूर्ति को एक पीपल के पेड़ के नीचे पाया था।

यह मूर्ति भूमि-स्पर्श-मुद्रा में है। इसकी ऊँचाई १०½ फीट है। सन् १८७६ ई० में श्रीकारलाइल ने इस स्थान की खोदाई प्रारम्भ करायी थी, जो सन् १९१२ में पूर्णतः समाप्त हुई।

खोदाई के समय एक आयताकार विहार मिला, जिसका प्रमुख-द्वार पूर्व की ओर था। उसके पश्चिमी भाग में एक मूर्ति का सिंहासन मिला, जो सतह से ३ फीट ७ इं० ऊँचा था। जिस कोठरी में यह सिंहासन पाया गया, वह भीतरी नाप में १३' ३"× २' ६" है। सन् १९११ में मूर्ति की मरम्मत कराई गयी। (मरम्मत कराने के लिए भिक्षु महावीर ने साठ रुपये श्रीहीरानन्द शास्त्री को दिये थे।[1]) मरम्मत के पश्चात् पुनः मूर्ति अपने पुराने सिंहासन पर बैठाई गई।



माथाकुंवर का मंदिर

1—A. S. R. for 1910-11 P. 63.

मन्दिर की खोदाई कराते समय श्री कारलाइल को सन् १८७६ में यहाँ से एक पत्थर का काला तख्ता मिला था, जो ३३½ इञ्च लम्बा था। उस पर तेइस पंक्तियों में कुछ लेख लिखा हुआ था, किन्तु अत्यधिक खराब हो जाने के कारण सब नहीं पढ़ा जा सका। वह इस समय लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। लेख ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी की नागरी लिपि में था। कारलाइल ने उसे इस प्रकार पढ़ना प्रारम्भ किया था—ओं नमो बुद्धाय नमो बुद्धाय भिक्षुणे ;······ ।

इस लेख की लिपि तथा यहाँ की ६″×७″×२″ माप वाली ईंटों से पुरातत्त्व-मनीषियों ने प्रमाणित किया है कि इस मूर्ति तथा मन्दिर का निर्माण ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के कलचुरी उत्तराधिकारियों के समय में हुआ था। चीनी भिक्षु फाहियान, हुएनसांग, इत्सिंग आदि ने इनका कुछ भी वर्णन नहीं किया है, यदि ये प्राचीन होते तो चीनी यात्रियों ने अवश्य इन्हें देखा होता।

प्राप्त वस्तुयें

१—खोदाई के समय एक ताँबें का सिक्का मन्दिर से मिला, जो पिछले कुशान-काल का था।

२—कुछ मिट्टी के बने मेज मन्दिर के पास मिले।

३—कुछ मृरमयी मुहरें भी मन्दिर के सामने दक्षिणी भाग में पायी गईं।

४—कतिपय लोहे की वस्तुयें प्राप्त हुईं, जिनमें एक तलवार की मुठिया भी थी।

५—एक ताँबें की मुहर मन्दिर के दक्षिणी भाग की एक कोठरी से मिली। जो चौकोर थी, जिसकी भुजायें १″×½″

थीं। बीच में 'वैतकस्य' लेख लिखा हुआ था। पुरातत्त्व मनीषियों का कथन है कि यह मुहर छठीं शताब्दी ईस्वी की है, इसका सम्बन्ध माथाकुँवर के मन्दिर से नहीं है।

(१२) चहारदीवारी

श्रीवोगेल ने सन् १९०५-६ में कुशीनगर के विहारों के चारों ओर जानेवाली एक दीवार का पता लगाया और प्रमाणित किया कि यह एक सुदृढ़ चहारदीवारी थी। उन्होंने खोदाई कराते समय इसके दक्षिण में एक प्रवेश मार्ग पाया, जो वर्तमान् माथा-कुँवर-मन्दिर से दक्षिण-पूर्व अवस्थित है। प्रवेश द्वार ११′ १०″ चौड़ा है। इसके बनाने में विशेषकर दो प्रकार की ईंटों का प्रयोग हुआ है। वह ईंटें नाप में १३½″×७½″×२¼″ और १४″×८″×२″ हैं। ईंटों की माप से ही इस दीवार की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रवेश-द्वार खेतों की सतह से १″ नीचे है। वहाँ से कुछ दूर आगे पूरब और परिनिर्वाण विहार D के सामने दक्षिण यह दीवार १′ ७″ की गहराई पर पाई जाती है। और कुछ आगे अनुरुधवा गाँव के सामने जाने पर यह उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यहाँ भूमि में २′ नीचे पाई जाती है।

दक्षिणी प्रवेश-द्वार के कुछ दूर पश्चिम जाने पर यह दीवार १′ १०″ नीचे मिलती है। माथाकुँवर-मन्दिर से पश्चिम-दक्षिण ओर जहाँ पर यह रामनगर की सड़क से मिलती है, वहाँ दीवार की गहराई १′ ६″ है। आगे जाकर दक्षिणी भुँगवा गाँव के पास एक कोण बनाती है, वहाँ से गाँव लगभग २०० गज दूर पड़ता है। उस कोण से रामनगर की सड़क के समानान्तर लगभग ३७० फीट तक उत्तर चली जाती है। वहाँ

दीवार की गहराई ५′ है। इसके पश्चिमी भाग में खोदाई कराई गई थी किन्तु कोई द्वार नहीं मिला। आगे चढ़कर यह दीवार वर्तमान बिड़ला धर्मशाला के पास पश्चिम ओर अधिक कोण बनाती है। वहाँ यह खेतों की सतह से १′ १०″ नीचे है। पुनः बिड़ला धर्मशाला के दक्षिणी घेरे से होती उत्तर-पूर्व जाती हुई रामनगर की सड़क को पार करती है। वहाँ से थोड़ी दूर आगे जाकर बौद्ध विहार से दक्षिण-पश्चिम कुछ दूर पर ३७′ ३″ तक उत्तर ओर मुड़ जाती है और बौद्ध विहार के दक्षिण से होती हुई उपोशथागार E के उत्तरी-पूर्वी कोने से दूर कुलम्ही-पोखर की ओर जाती दीख पड़ती है। वहाँ पर दीवार भूमि-सतह से ४′ नीचे है।

इस चहारदीवारी के दक्षिणी पूर्वी कोने से उत्तर ओर आगे चलने पर कुछ दूर दीवार नष्टप्राय जान पड़ती है। पुनः चौकोर स्तूप (C) से ३०२′ की दूरी पर भूमि की सतह से ७′ ९″ नीचे मिलती है। वहाँ से उत्तर ओर क्रमशः नीचे होती जाती है और १२′ की गहराई तक मिलती है। इसके ऊपर नदी का बालू बिछा हुआ है। खोदाई के समय पानी निकल आने के कारण इस भाग की पर्याप्त परीक्षा नहीं की जा सकी। डा० वोगेल का कहना है कि यह चहारदीवारी भूमि में धस गई है या भूमि के धीरे-धीरे मोटी होते जाने के कारण नीचे पड़ गई है।

इस चहारदीवारी के भीतर की भूमि का क्षेत्रफल ३६ एकड़ है। अभी इसमें अनेक इमारतें भूमि के नीचे पड़ी हुई भविष्य का मुँह देख रही हैं। पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों को चाहिये कि कुशीनगर की पूर्ण खोदाई करायें और इस चहारदीवारी के भीतर तबतक किसी नयी इमारत को न बनाने दें,

जबतक कि इसके बीच की भूमि का खनन कार्य पूर्णतः सम्पन्न न हो जाय।

(१३) राजधानी और स्तूपों के खँडहर

माथाकुँवर-कोट से दक्षिण-पूरब २५०० फ़ीट दूर, अनुरुधवा गाँव के उत्तर-पूरब एक टीला पड़ता है। सन् १८६१ ई० में जनरल कनिंघम ने इसका विस्तार ५०० वर्ग फ़ीट लिखा था, किन्तु पीछे श्री विंसेट स्मिथ ने उक्त क्षेत्रफल को अधिक बतलाते हुए लिखा कि टीले का वास्तविक नाप उत्तर से दक्षिण १७० फ़ीट और पूरब से पश्चिम ११५ फीट है।[१] किन्तु डा० वोगेल ने जनरल कनिंघम के ही कथन को स्वीकार किया और बतलाया कि तीस वर्षों के बीच किसानों ने अपने हल और कुदाल के घर्षण से टीले को छोटा कर दिया है।

सन १९१२ में इसकी खोदाई कराई गई। ५०′ से भी अधिक लम्बाई तक ८′ गहरी खोदाई हुई। यन्त्र पानी की सतह तक पहुँच गया, किन्तु ईंटों की परत के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं मिला। समूचा टीला गली हुई मिट्टी का ढेर जान पडता था। हुएनसांग ने इसे अशोक-निर्मित स्तूप लिखा है, किन्तु प्रत्यक्षतः यह स्तूप धातु-रहित है।

उक्त टीले से २२५ गज़ दक्षिण आम के बगीचे में एक प्राचीन इमारत की नींव सन् १९०५ में मिली थी, जिसका निचला भाग ३२′ और ऊपरी भाग २७′ वर्गाकार था। दीवार की नींव ८′ ६″ थी। इसकी ईंटों का माप १४″×८½″×२″ था। ईंटों के माप से ही इसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा

1—A. S. R. VOL. 1 P. 79.

सकता है। इसे देखने से पता चलता है कि यह कोई मन्दिर रहा होगा।

अनुरुधवा गाँव के बीच एक गड्ढे में चार छोटे-छोटे स्तूपों की नींवें मिली, जो पूरब-पश्चिम एक पंक्ति में स्थित थीं। इनकी ईंटें माप में १२"×८"×२" थीं। सन् १९१२ में इनकी पूर्णतः जाँच हुई। इनके मध्य भाग में ६½ फ़ीट की गहराई तक खोदाई कराने पर दो स्तूपों से चार ईंटों के तख्ते मिले, जिनमें एक पर सिद्धार्थ कुमार की उत्पत्ति की मूर्ति बनी हुई है। महामाया देवी, ब्रह्मा और शाल वृक्ष की मूर्तियाँ स्पष्टतः दीख पड़ती हैं। दूसरे तख्ते पर भगवान् को धर्म-चक्र-मुद्रा में दिखलाया गया है। तीसरे पर मुचलिन्द नाग के फण के नीचे भगवान् बैठे हुए हैं। चौथे पर भगवान् की मूर्ति का निचला भाग ही अवशेष है, जान पड़ता है कि यह मूर्ति वरद-मुद्रा में थी। इन प्राप्त ईंटों के तख्तों से प्रगट होता है कि ये ईंटें मूर्ति बनाने के काम में आती थीं।

उक्त चारों स्तूप वर्तमान् सतह से ८ फ़ीट नीचे हैं। पुरातत्त्व मनीषियों ने अनुमान किया है कि प्राचीन कुशीनगर-राजधानी का विस्तार अनुरुधवा गाँव और उसके उत्तर का टीला तथा गाँव के पूर्वी भाग में रहा होगा। डा० वोगेल ने बतलाया है कि इसका विस्तार अनुरुधवा गाँव से दक्षिण दूरतक सिसवा की ओर भी रहा होगा।[1]

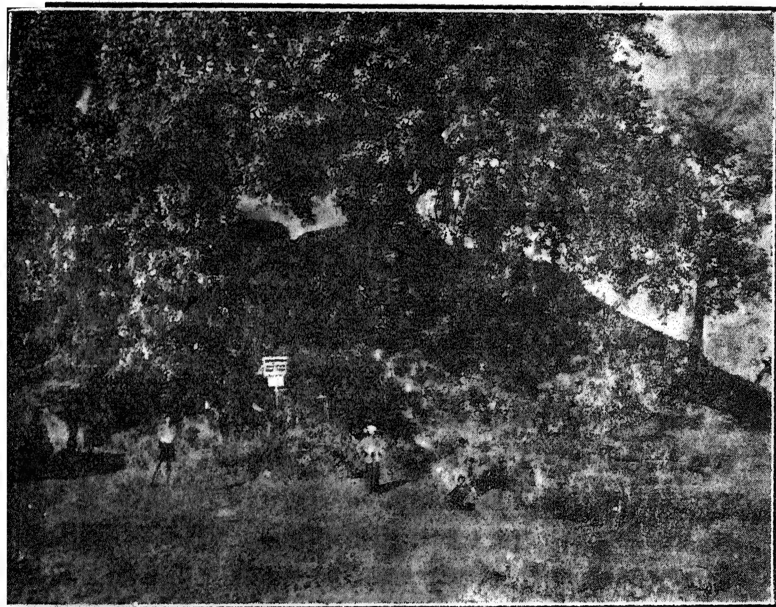
(१४) रामाभार; मुकुट-बन्धन

माथाकुँवर-कोट से १६०० गज दूर पूरब रामाभार ताल के पश्चिमी किनारे पर एक बहुत बड़ा स्तूप है, जो सन् १८६१ में ४९ फ़ीट ऊँचा था। जैसा कि मैंने बतलाया है, यहीं पर भगवान्

1—A. S. R. for 1905-6, P. 77,

बुद्ध का दाह-संस्कार हुआ था। यहीं विशाल मुकुट बन्धन नाम का एक विहार भी था। जिस समय इत्सिंग आया था, उस समय यहाँ के विहार में लगभग सौ भिक्षु रहते थे। इसके पास में पूरब ओर हिरण्यवती नदी बहती थी।

इस रामाभार के विशाल स्तूप की थोड़ी खोदाई सन् १८७७ में एक दीवानी अफसर द्वारा हुई थी। उस समय इसके मध्य भाग में २२′ की गहराई तक एक कुँआ खोदकर जाँच की गयी थी, किन्तु मिट्टी की कतिपय मुहरों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला था।[1]



रामाभार का ध्वंसित स्तूप

1—A. S. R. VOL, xviii, P. 75.

पुनः सन् १९१०-१२ में इसकी खोदाई कराई गई। इसके सिरे से लेकर ४८ फीट नीचे तक यन्त्र डुबाया गया और जाँच की गई। पानी की सतह तक जाँच करने पर भी केवल मौर्य कालीन ईंटें ही मिलीं, जो इसकी प्राचीनता की द्योतक हैं।

स्तूप की सतह के पूर्वी भाग से ५० फीट की दूरी तक खोदाई की गई। तब पता चला कि इस स्तूप का निचला व्यास १५५ फीट है और यह परिनिर्वाण स्तूप A से दुगुना बड़ा है। स्तूप के चारों ओर मिट्टी की सैकड़ों मुहरें मिलीं। उनकी अक्षरों से पता चलता है कि ये पिछले समय की हैं। स्तूप के पास एक आयताकार विहार मिला, जो ४०′ ६″×२७′ ६″ है। वह ५६′ ९″×४४′ के चबूतरे पर स्थित है। यह चूने के घने परत से ढँका हुआ है। इसके दोनों ओर एक-एक प्रवेश मार्ग हैं।

खोदाई करते समय रामाभार के विहारों से असंख्य बड़े और असामान्य प्रकार की चित्रित ईंटों के नमूने पाये गये। जो नाप में २½′×७½′×५″ से लेकर १′ ४″×८½″×५″ तक के थे। वे इस तरह खोदकर सजाये गये थे कि परस्पर मिला देने से किसी मनुष्य या मूर्ति के रूप में आ जाते थे। इनके बीच में तीन-तीन छेद बने हुए थे, जिनका व्यास ¾″ था।

बड़े स्तूप के दक्षिण अन्य छोटे-छोटे चौदह स्तूपों का पता लगा। उनकी खोदाई कराते समय अनेक चित्रित ईंटों के साथ एक पत्थर की प्रतिमा का पादपीठ भी मिला। जिसपर पाँच पंक्ति का एक लेख था। लेख एकदम घिस गया था। पादपीठ विस्तार में ५′×३′ था। दो विभिन्न प्रकार की मृण्मयी मुहरें भी प्राप्त हुईं, जिनके ऊपरी भाग में तीन स्तूप के चिह्न बने हुए थे और निचले भाग में पाँच पंक्तियों में लेख खुदे हुए थे।

अभी तक रामाभार की खोदाई पूर्णतः नहीं समाप्त हुई है।

इत्सिंग ने जिस काली मूर्ति का वर्णन किया है, वह भी अभी नहीं प्राप्त हुई है। इस स्थान के चारों ओर दूर-दूरतक खँडहर पड़े हुए हैं। पं० हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि भविष्य के खनन कार्य से न केवल इस स्थान और मुकुटबन्धन चैत्य पर ही प्रकाश पड़ेगा, प्रत्युत उससे कुशीनगर के इतिहास का भी पूर्ण परिचय मिलेगा।[१]

1—A. S. R. for 1911-12, P. 140.

त्रयोदश प्रकरण

कुशीनगर की वर्तमान् अवस्था

१. भिक्षु महावीर द्वारा पुनरुद्धार

जिस समय कुशीनगर के टीलों की खोदाई हो रही थी, उस समय तक यहाँ दर्शनार्थ आये हुए व्यक्तियों के ठहरने का कोई प्रबन्ध न था। न तो कोई धर्मशाला थी और न कोई विहार था। कुशीनगर उजाड़ एवं जनशून्य पड़ा था। आस-पास के ग्रामीण किसान भूतप्रेतों के डर से दिन में भी अकेले आने में हिचकते थे। उन्हीं दिनों पूज्य भिक्षु महवीर—जो गतशताब्दी के उत्तर भारतीय प्रथम बौद्ध भिक्षु थे, यहाँ आये और रहने लगे।

वे आरा के बाबू कुँवरसिंह के सम्बन्धी थे और सन् १८५८ के स्वातन्त्र्य-संग्राम में उनके कन्धों से कन्धा भिड़ाकर अँग्रेजों से लड़े थे। किन्तु बाबू कुँवरसिंह की मृत्यु के बाद वे कुश्तियों में बाजी मारते हुए मद्रास होकर लङ्का पहुँचे। मद्रास में एक मुसलमान पहलवान के साथ उन्होंने कुश्ती मारी, जिसमें हजार रुपये पुरस्कार में मिले थे। लङ्का पहुँचकर वे इन्द्रासभ स्थविर से प्रभावित होकर भिक्षु हो गये।

भिक्षु महावीर पहले भी कुशीनगर आ चुके थे, किन्तु यहाँ रहने के विचार से नहीं। पहली बार के दर्शन से ही उन्हें इस स्थान से विशेष प्रेम हो गया था, जिसकी प्यास कभी न बुझती थी। इस बार वे यहाँ स्थायी रूप से रहने के लिये सन

१८९० ई० में कलकत्ता से चले आये और एक छोटी-सी पत्तों की झोंपड़ी बनाकर उसमें रहने लगे। आसपास के निर्धन किसान ही आपके अन्नदाता थे।

बौद्ध विहार का निर्माण

भिक्षु महावीर ने एक ब्राह्मण से साठ रुपये बीघा पर कुछ जमीन खरीदकर बौद्ध विहार के बनवाने का आयोजन किया। इस शुभ कार्य को चटगाँव के पँवा (=रामू) नगरवासी श्रीखेजरी ने पन्द्रह हजार रुपये की लागत से सन् १९०२ ई० में सम्पादित किया। इसके पहले भी श्रीखेजारी ने उन्हें पर्याप्त धन की सहायता दी थी। वर्तमान् बौद्ध विहार के पश्चिमी बरामदे में लगे हुए दोनों चित्र प्रत्येक यात्री को भिक्षु महावीर और श्रीखेजारी की याद दिलाते हैं, क्योंकि इन दोनों में से अकेला कोई भी इस विहार को न बना सकता।

भिक्षु महावीर ने अपने हिस्से का कार्य-सम्पादितकर सन् १९२० के चैत्र मास में सदा के लिए अपनी आँखें बन्द करलीं।

२. चन्द्रमणि महास्थविर

भिक्षु महावीर के पश्चात् पूज्य चन्द्रमणि महास्थविर ने कुशीनगर की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए भरपूर प्रयत्न किया है। आपका जन्म सन् १८७५ ई० में ज्येष्ठ वदी ६ मंगलवार को अराकान की रौंच्छौं नदी के पूर्वी तट पर स्थित पौपक् क्याक् नामक गाँव में हुआ था। आप सात वर्ष की ही अवस्था में घर छोड़कर अपने चाचा भिक्षु ऊ चन्दिमा के पास अक्याब चले गये और वहीं पढ़ना शुरू किये। अक्याब में ही सन् १८८५ में आपकी प्रव्रज्या भी हो गई।

सन १८९१ में महाबोधि सभा के संस्थापक स्वर्गीय अना-

गारिक धर्मपाल और थियोसोफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष श्रीऑलकाट महाबोधि सभा के प्रचारार्थ अराकान गये। उन लोगों ने आपको भारत आने के लिए आग्रह किया। फलतः आप अपने गुरु भिक्षु ऊ चन्दिमा के आज्ञानुसार एक श्रामणेर के साथ भारत आये, और बुद्धगया में रहने लगे।

कुछ दिनों के बाद बुद्धगया से कलकत्ता गये और फिर देश लौट गये, क्योंकि भारत में आपका मन नहीं लगता था। अराकान जाने पर वहाँ भी चित्त को शान्ति न मिली और पुनः भारत को प्रस्थान किये। कलकत्ते में भिक्षु महावीर से भेंट हुई। उन्होंने "आओ बच्चा! आओ बच्चा!!" कहकर बुलाया एवं आपके पढ़ने लिखने का सारा प्रबन्ध कर दिया। कुछ दिन पश्चात् भिक्षु महावीर गहमर आये और आपको कलकत्ते से बुलाकर वहीं पढ़ने का प्रबन्ध किये।

जिस समय महावीर कुशीनगर में रहते थे और विहार के निर्माण में लगे थे, आप गहमर से कुशीनगर आये तथा बर्मा के मौलमीन नगर के पास 'कोन्हा' में पालि ग्रन्थों का पूर्णरूप से अध्ययन करने के लिए चले गये।

दूसरे वर्ष सन् १९०३ में माघ की पूर्णिमा को पँवा (=रामू) में श्रीखेजारी की सहायता से आपकी उपसम्पदा हुई। तत्पश्चात् आप कुशीनगर चले आये और तब से आजतक स्थायीरूप से यहीं हैं।

आपके समय में कुशीनगर में हुए कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

स्तूप का जीर्णोद्धार

बौद्ध विहार का निर्माण हो गया। परिनिर्वाण मन्दिर की मरम्मत हो गई, किन्तु परिनिर्वाण स्तूप (A) खोदाई के बाद

भी ज्यों का त्यों पड़ा ही रह गया। हम लिख आये हैं कि स्तूप के जीर्णोद्धार के लिये एक बर्मी सज्जन दस हजार रुपये सरकार को दिये थे और उसी से स्तूप का खनन-कार्य हुआ था। पुनः सन् १६२४ में वे यहाँ पधारे, जो बर्मा के हेन्टजा नगर के रहनेवाले थे, जिनका नाम ऊ फोच्यू था; उन्होंने स्तूप का जीर्णोद्धार करने के लिये पुनः सरकार को लिखा। संस्कार ने इस शर्त पर जीर्णोद्धार की स्वीकृति दी कि वे सारा व्यय जमा करदें, सरकार स्वयं जीर्णोद्धार-कार्य करायेगी। सन् १९२६ के प्रारम्भ में जीर्णोद्धार-कार्य प्रारम्भ हुआ, जो सन् १९२७ के अन्त में पूर्ण हुआ।

पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों का विचार था कि नवीन स्तूप साँची के स्तूप जैसा बने, किन्तु स्थानाभाव के कारण वैसा न बन सका। ठेका देने के कारण स्तूप भी मजबूत नहीं बना, यही कारण है कि इन थोड़े ही दिनों में उसका पलस्तर फटने लगा और पपड़ियों की भाँति छूट-छूटकर गिरने लगा।

स्तूप की पहली गोलाई १८० फीट थी, परन्तु अब केवल १६५ फीट है। ऊँचाई में भी ७५ फीट ही है। स्तूप के भीतर एक ८ फीट ऊँचा वर्तमान् स्तूप के आकार का ही मिर्जापुर के पत्थर का स्तूप बनवाकर उसमें नये ताम्रपत्र और पालि त्रिपिटक के कुछ अंश की स्थापना की गई। सुवर्ण तथा रौप्य बोधि वृक्ष और बहुत सी मूर्तियाँ रखी गईं। खनन-कार्य से प्राप्त भस्मावशेष की भी स्थापना की गई। यह सारा कार्य चन्द्रमणि महास्थविर के प्रधानत्व में ही सम्पादित हुआ।

स्तूप के जीर्णोद्धार-कार्य में ऊ फोच्यू ने कुल अठारह हजार रुपये व्यय किये।

स्तूप पर सोना लगवाना

पुनः ऊ फोच्यू और उनकी धर्मपत्नी माकिनसू का विचार हुआ कि स्तूप को रंगून के श्वेडगोंपेगोडा के समान सुवर्णान्वित करदें। बहुत से लोगों ने उनके इस विचार को रामाभार के स्तूप के जीर्णोद्धार के रूप में परिवर्तित कर लेने को कहा, किन्तु वह भाग्यशाली दम्पति स्तूप को सुवर्णान्वित देखना चाहती थी। सन् १६३४ में ग्यारह हजार नवसौ रुपये की लागत से इस पवित्र कार्य का भी सम्पादन हो गया।

सोना लगानेवाले कारीगरों के अदक्ष और स्तूप के पलस्तर के मजबूत न होने के कारण सोना चिरस्थायी नहीं हुआ, तथापि इस पुण्य-कृति से ऊ फोच्यू तथा श्रीमती माकिनसू का नाम कुशीनगर के इतिहास में अमर हो गया।

माथाकुँवर के मन्दिर का निर्माण

माथाकुँवर की मूर्ति सन् १९१२ में अपने प्राचीन सिंहासन पर बैठा दी गई थी और उसकी यत्किंचित मरम्मत भी हो चुकी थी, किन्तु मन्दिर का निर्माण नहीं हुआ था। सन् १९२६-२७ में श्री ऊ फोच्यू ने इस मन्दिर को भी बनवाया। मन्दिर अपने प्राचीन दीवारों पर ही बनाया गया, किन्तु सिंहासन में बहुत-सी मूर्तियों के होने के कारण सामने का निचला भाग नहीं पटा गया, क्योंकि उसके पट देने से सिंहासन की प्राचीन सुन्दरता का अनुमान लगाना भी कठिन होता। वर्षाकाल में वह पानी से भर जाता है, किन्तु उससे मन्दिर को कोई क्षति नहीं पहुँचती है।

बुद्धजयन्ती महोत्सव और मेला

श्रीचन्द्रमणि महास्थविर ने सन् १६२४ की वैशाख-पूर्णिमा को कुशीनगर में बुद्धजयन्ती महोत्सव का आयोजन किया और मेला लगना भी प्रारम्भ हुआ। कुशीनगर का बुद्धजयन्ती महोत्सव विशेष दर्शनीय होता है। महोत्सव के बुद्धपूजा, रथयात्रा, जुलूस, बौद्ध-महासम्मेलन, महापरिनिर्वाण सूत्र का अखण्डपाठ, धर्मोपदेश आदि अनेक कार्य-क्रम होते हैं। इसमें सम्मिलित होने के लिए देश-विदेश के प्रतिनिधि और विद्वान् आते हैं। कुछ वर्ष पूर्व महोत्सव का जुलूस कसया जाया करता था, जुलूस में सम्मिलित सभी व्यक्तियों को श्रीमहावीर प्रसाद वकील (कसया) शर्बत पिलाते थे तथा सभा आदि का सारा प्रबन्ध कराते थे, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् कसया वासियों की उपेक्षा के कारण अब जुलूस कसया न जाकर कुशीनगर के खँडहर की ही प्रदक्षिणा करता है और सन्ध्या को खँडहर के विस्तृत मैदान में बौद्ध महासम्मेलन तथा विराट् सभा होती है।

मेला प्रतिवर्ष लगभग एक मास रहता है, जो बुद्धजयन्ती से प्रारम्भ होता है। बुद्धजयन्ती महोत्सव और मेला के होने से धीरे-धीरे जनता से सम्पर्क होने लगा है। वह कुशीनगर के महत्व को समझने लगी है।

चन्द्रमणि निःशुल्क पाठशाला

कुशीनगर के आसपास की निर्धन और अशिक्षित ग्रमीणों को शिक्षित करने के लिए सन् १९२६ ई० में लंका निवासी भिक्षु श्रद्धानन्द (Mr. M. A. Peiris) ने एक निःशुल्क पाठशाला की स्थापना की। उन्होंने पाठशाला का नाम अपने गुरु

के नाम पर ही "चन्द्रमणि निःशुल्क पाठशाला" रखा। वे चन्द्रमणि महास्थविर के ही शिष्य थे। वे इस पाठशाला की तन, मन, धन से सदा उन्नति चाहते थे। उनके सम्बन्ध में हम "लंका-यात्रा" में लिख चुके हैं। उनके बिना प्रयत्न के पाठशाला का जीवित रहना सम्भव न था। वे इस पाठशाला के छात्रों और अध्यापकों के माँ-बाप थे। किन्तु खेद है कि उन्होंने सन् १९३४ में ही अपनी जीवन-लीला संवरण कर लीं !

भिक्षु श्रद्धानन्द के देहान्त के बाद पाठशाला का सारा भार चन्द्रमणि महास्थविर के ऊपर आ पड़ा। और तब से लेकर आजतक वे ही इसका संचालन करते हैं।

सन् १९४२ में भिक्षु श्रीकित्तिमाजी के प्रयत्न से सेठ श्रीयुगलकिशोर बिड़ला ने सात हज़ार रुपये की लागत से एक सुन्दर पाठशाला-भवन का निर्माण करा दिया, जिससे न केवल पाठशाला-भवन के अभाव की पूर्ति हुई, प्रत्युत इस प्रदेश की सब पाठशालाओं से यह पाठशाला आगे बढ़ गई। पाठशाला के शिक्षण और सुचारु रूप से कार्य-सम्पादन में श्रीझींगुर प्रसाद सिंह मौर्य (बजरकेरइया) जैसे त्यागी अध्यापक का सहयोग एक महान कार्य किया है, जिसकी अमिट छाप पाठशाला के जीवन पर सदा बनी रहेगी।

वह दिन हमें स्मरण है जब कि आसपास की जनता कुशीनगर के बौद्ध विहार के कुँआ का पानी तक पीने में पाप समझती थी, और अपने बच्चों को बौद्धों की पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजने में हिचकती थी, किन्तु आज ? आज तो भिक्षु श्रद्धानन्द और चन्द्रमणि महास्थविर के सत्कार्यों के प्रभाव से आसपास के छोटे-छोटे स्कूल टूट गये हैं और सब लोग

अपने बच्चों को यहीं भेजने लगे हैं। प्रस्तुत लेखक भी इसी पाठशाला का एक तुच्छ छात्र है।

महावीर विद्यालय

चन्द्रमणि महास्थविर ने सन् १९४४ में कुशीनगर के पुनरुद्धारक के नाम पर 'महावीर विद्यालय' की स्थापना की, जो अभी एक झोंपड़े में सुचारु रूप से चल रहा है। इस विद्यालय में पढ़ने के लिए दूर-दूर के छात्र आते हैं और इस पवित्र स्थान में रहकर सदाचार का पालन करते हुए अच्छी शिक्षा पाते हैं।

अन्य भवन

पूर्व वर्णित बौद्ध विहार के अतिरिक्त कुशीनगर का भिक्षु-सीमा-गृह और अराकानी शरणार्थियों द्वारा निर्मित धर्मशाला भी दर्शनीय हैं। दोनों के ऊपरी भाग में बुद्ध मन्दिर बने हुए हैं। भिक्षु-सीमा-गृह में अनेक भाषाओं के ग्रन्थों से सुसज्जित 'परिनिर्वाण पुस्तकालय' बौद्ध संस्कृति का अध्ययन करने के लिए बहुत लाभप्रद है।

३. विशेष

बिड़ला धर्मशाला

कुशीनगर में दर्शनार्थ आनेवाले यात्रियों को विश्राम करने के लिए सन् १९३४ ई० में सेठ श्रीयुगलकिशोर बिड़ला ने एक सुन्दर धर्मशाला का निर्माण कराया। जिसके निर्माण-कार्य में आजतक पचास हजार रुपये व्यय हो चुके हैं। इस धर्मशाला के बन जाने से एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है, जो आये दिन कुशीनगर के सब भवनों से सुन्दर और शोभनीय है।

बुद्ध कालेज

भिक्षु श्रद्धानन्द और चन्द्रमणि महास्थविर के सत्प्रयत्न से चन्द्रमणि निःशुल्क पाठशाला का कार्य भली भाँति सम्पादित हो रहा था, किन्तु उच्च शिक्षा के विद्यालयों का अभाव था। सन् १९३४ ई० में इस दिशा में बाबा राघवदास का ध्यान आकृष्ट हुआ और चन्द्रमणि महास्थविर के सहयोग से बौद्ध विहार के एक बरामदे में बुद्ध-कालेज का कार्य प्रारम्भ किया गया। सन् १९३६ ई० में स्वर्गीय आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा कालेज-भवन का शिलान्यास हुआ। उन्हीं दिनों पं० द्वीप-नारायणमणि जैसे उत्साही प्रधानाध्यापक के सतत प्रयत्न से कालेज-भवन का निर्माण होना प्रारम्भ हुआ, जो उनके अध्यव-साय और घोर परिश्रम से कुछ ही दिनों के पश्चात् बनकर तैयार हो गया। (इस बात को भी नहीं भूलना चाहिये कि नवीन कालेज-भवन का पुनः शिक्षामन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्द के हाथों शिलान्यास जून सन् १९३९ में कराया गया!) यदि इस कालेज को पं० द्वीपनारायणमणि जैसा योग्य कार्यकर्त्ता न मिला होता, तो सम्भव था कि यह इतना शीघ्र उन्नति नहीं कर सकता।

आजकल कालेज की दशा अच्छी है। भवन का निर्माण हो चुका है, किन्तु उसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। छात्रावास की बहुत बड़ी कमी है। जनता को चाहिए कि वह सब प्रकार से इस शिक्षण-संस्था की सहायता करे और कुशीनगर के प्राचीन विद्यालयों की भाँति पुनः इस निर्वाण-स्थल पर विश्व-विद्यालय बनाने का प्रयत्न करे।

शाल-वाटिका

पाठक जानते हैं कि बुद्धकाल में निर्वाण-स्थल शालवन-उपवत्तन था, किन्तु समय के परिवर्तन के साथ वह भी अपना ढाँचा बदल चुका। आजकल तो शिशपा-वन बना हुआ है! सन् १९३६ ई० में गोरखपुर कमिश्नरी के कमिश्नर श्री आर० सी० ए० एस० होबर्ट (J. C. S.) का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। जब वे यहाँ पधारे, तब शालवन को न पाकर उन्हें महान् दुःख हुआ। उन्होंने इसे पुनः शाल-वाटिका के रूप में देखने का संकल्प किया और बहुत-सा धन व्यय करके साखू का बीजारोपण कराया। सम्प्रति कुशीनगर में परिनिर्वाण-मन्दिर के पास जो छोटे-छोटे सात साखू के वृक्ष दीखते हैं, वे श्रीहोबर्ट की ही पुण्य-कृति हैं।

उपसंहार

जनरल श्री ए० कनिंघम की खोज, पुरातत्त्व-विभाग के खनन-कार्य और भिक्षु महावीर के पदार्पण से कुशीनगरवासी और अन्य भारतीय तथा विदेशी इतिहासप्रेमी व्यक्तियों में जो सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना जागी थी, वह बराबर उन्नति कर रही है। एक पीढ़ी के पश्चात् दूसरी पीढ़ी में वह अपना कार्य विस्तृत करते जा रही है। लंका, बर्मा, स्याम, चीन, जापान, मंगोलिया, तिब्बत, नेपाल, भूटान, सिकिम, साइबेरिया और भारत के विभिन्न प्रदेशों के जो यात्री इस पवित्र तीर्थस्थान का दर्शन करने आते हैं, उन्हें थोड़ी देर के लिए सन्तोष हो जाता है और वे इसके उत्थान के नये-नये स्वप्न देखते हैं, किन्तु क्या कुशीनगर के नागरिक और अन्य इतिहास तथा धर्म के पुजारी इतने से ही सन्तोष कर लेंगे? उन्हें चाहिए

कि कुशीनगर में एक संग्रहालय की स्थापना करें और स्थानीय तथा जिले के विभिन्न स्थानों के खनन-कार्य से प्राप्त मूर्ति, मुद्रा आदि को एकत्र करें, जिससे यात्रियों को कुशीनगर की गौरव-गाथा साक्षात् दृष्टिगोचर हो और वे इसके महत्त्व को भलीभाँति समझ सकें। कुशीनगर से प्राप्त जो वस्तुयें प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ में हैं, उन्हें वापस करायें या उनकी प्रतिलिपि मँगाकर संग्रहालय को परिपूर्ण करें।

एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तकालय की भी स्थापना हो, जिसमें पुरातत्त्व, इतिहास, धर्म, राजनीति आदि के ग्रन्थ एकत्रित हों। बर्मी, सिंहली, स्यामी, तिब्बती, नेपाली, चीनी, जापानी आदि साहित्य के ग्रन्थों के संकलन के साथ पालि त्रिपिटक और संस्कृत के महायान-ग्रन्थों का पूर्णरूप से संग्रह हो। इसे बौद्ध संस्कृति के अध्ययन का एक आदर्श केन्द्र बनाया जाय। समाचार-पत्रों की पूर्ण व्यवस्था हो।

रामाभार के ध्वंसित-स्तूप का शीघ्र जीर्णोद्धार हो तथा कुशीनगर के खँडहरों का पूर्णरूप से खनन-कार्य कराया जाय। हमें ज्ञात है कि कुशीनगर की चहारदीवारी के अन्तर्गत अनेक खँडहर दबे पड़े हैं। बिशुनपुर के उत्तर हिरण्यवती-पार के स्तूपों के ध्वंसावशेषों का खनन-कार्य शेष है, सम्पूर्ण अनुरुधवा गाँव और उसके पूर्व-दक्षिण दूर-दूर तक प्राचीन राजधानी के खँडहर गाँव तथा जंगल बने हुए हैं। जबतक इनकी खोदाई न होगी, कुशीनगर का अर्द्धइतिहास अन्धकार में ही पड़ा रहेगा।

इस प्रकार कुशीनगर के पुनरुद्धार तथा जीर्णोद्धार सम्बन्धी अनेक कार्य करने शेष हैं, जिनको पूर्ण करना भारत सरकार का परम कर्त्तव्य है। इस अवस्था में जब कि विश्व के सभी बौद्ध राष्ट्र क्रमशः स्वतन्त्र हो रहे हैं और परस्पर अन्तर्राष्ट्रीय

सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, तब भारत सरकार को चाहिए कि उनके पवित्र तीर्थ-स्थानों की हर एक प्रकार से रक्षा और उत्थान के कार्य कर उनसे अपना प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित करे। उन देशों से आनेवाले यात्रियों को सब प्रकार से यात्रा सम्बन्धी सुविधा दे और प्रान्तीय सरकार के ऊपर इस बात का बल दे कि वह सर्वदा उक्त कार्य करने के लिए कटिबद्ध रहे, जिससे परस्पर मैत्री बढ़े और विश्व-बन्धुत्व के भाव से ओतप्रोत होकर पुनः अन्य देशवासी भारत को अपना अग्रणी समझें।

इस कुशीनगर के शालवन उपवत्तन में परिनिर्वाण मञ्च पर लेटे हुए परम कारुणिक तथागत ने जो अप्रमाद के साथ विहरते हुए जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करने का प्रवचन दिया था, उस उपदेश की छाप कुशीनगर के नागरिकों के हृदय में सदा अंकित रहे और वे अपने अतीत की विशिष्टताओं को जानकर पुनः बुद्ध, धर्म, संघ की शरण लें।

बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।